दोहा-अन्त्याक्षरी

संकलियत्री :—

भगवती देवी शर्मा

[धर्मपत्नी पं० श्रीराम शर्मा आचार्य]

प्रकाशक :—

अखण्ड ज्योति संस्थान

म थु रा.

प्रथमबार] १९६४ [मू० १ रुपया

अक्षर–सूची

दोहा-अन्त्याक्षरी

-: अ :-

अलख कहँहि देखन चहँहि, सो कस कहँहि प्रवीन ।
तुलसी जग उपदेश ही, बनि बुध अबुध मलीन ॥ १ ॥
अलख सबैई लखत वह, लख्यो न काहू जाय ।
दृग तारिन को तिल यथा, देखौ नहीं दिखाय ॥ २ ॥
अलख जान इन दृगन सों, विदित न देखौ जाइ ।
प्रेम कांति वाकी प्रकट, सबही ठौर दिखाइ ॥ ३ ॥
अचरज को कासों कहौं, विंदु में सिन्धु समान ।
रहिमन अपने आपते, हेरन हार हिरान ॥ ४ ॥
अमी पियावत मान बिन, रहिमन मोहिन सुहाय ।
मान सहित मरिबौ भलौ, जो विष देय बुलाय ॥ ५ ॥
अमित अथाहै हौ भरे, जदपि समुद्र अभिराम ।
कौन काम के जो न तुम, आये प्यासेन काम ॥ ६ ॥
अहित किये हू हित करै, सज्जन परम सुधीर ।
सोखे हू शीतल करे, जैसे नीर समीर ॥ ७ ॥
अग्नि धर्म है दहन ज्यों, भीगा जल का धर्म ।
परहित जीवन मरण त्यों, नर का निर्मल कर्म ॥ ८ ॥
अति उदारता बड़िन की, कहलौं बरनै कोय ।
चातक जाँचै तनिक घन, बरस भरै धन तोय ॥ ९

अति अनीति लहिये न धन, जो प्यारो मन होय ।
पाये सोने की छुरी, पेट न मारे कोय ॥ १० ॥
अमित लोभ ते हनि बड़, पै न करै परतीत ।
हेम हिरन पीछे गये, राम गँवाई सीत ॥ ११ ॥
असन वसन सुत नारि, सुख पापिहु के घर होइ ।
सन्त समागम प्रेमधन, तुलसी दुर्लभ दोइ ॥ १२ ॥
अन्तर अंगुरी चारि को, साँच झूठ में होइ ।
सब माने देखी कहो, सुनी न मान कोइ ॥ १३ ॥
अनुमान साक्षी रहत, होत नहीं परमान ।
कह तुलसी प्रत्यक्ष जो, सो कहु अपर को आन ॥ १४ ॥
अनसमझे नहिं मानिए, अवसि समुझिए आप ।
तुलसी आपु न समुझ बिन, पग-पग पर परिताप ॥ १५ ॥
अनुभव सत्य विवेकयुत, वचन लेत जो मान ।
गुरुमुख ताको जानिए, चतुर प्रवीन सुजान ॥ १६ ॥
अगम पन्थ है प्रेम को, जहाँ ठकुरई नाहिं ।
गोपिन के पीछे फिरें, त्रिभुवनपति वन माहिं ॥ १७ ॥
अन्तर तनक न राखिये, जहाँ प्रेम व्यवहार ।
उर सों उर लागे न तहँ, जहाँ रहतु है हार ॥ १८ ॥
अहंकार निवहै नहीं, पछतावहि सब कोय ।
दुर्योधन अभिमान तें, भये निधन कुल खोय ॥ १९ ॥
अरे फिरत कत बावरे, भटकत तीरथ भूरि ।
अजौं न धरत सीस रे, सहज सूर पग धूरि ॥ २० ॥
अरि छोटो गनिये नहीं, जाते होत बिगार ।
बड़े विपन कों छिनक में, जारत तनक अंगार ॥ २१ ॥
अति ही सरल न हूजिए, देखो ज्यों बनराय ।
सीधे-सीधे काटिये, बाँके तरु बचि जायं ॥ २२ ॥

अपने-अपने ठौर पै, शोभा लहत विपेख ।
चरन महावर ही भलौ, नैनन अंजन रेख ॥ २३ ॥
अपनी-अपनी गरज सब, बोलत करत निहोर ।
बिन गरजै बोलैं नहीं, गिरिवर हू को मोर ॥ २४ ॥
अति हठ मति करि हठ बढ़े, बात न करि है कोय ।
ज्यों-ज्यों भीजै कामरी, त्यों-त्यों भारी होय ॥ २५ ॥
अपनी पहुँच विचारि कै, करतव करिए दौर ।
तेते पाँव पसारिये, जेती लम्बी सौर ॥ २६ ॥
अति परिचय तें होत है, अरुचि अनादर भाय ।
मलियागिरि की भीलनी, चन्दन देत जराय ॥ २७ ॥
अपनी प्रभुता को सबै, बोलत भूँठ बताय ।
वेश्या बरस घटावही, जोगी बरस बढ़ाय ॥ २८ ॥
अपनी कीरति कान सुनि, होत न को खुस्याल ।
नाग मंत्र को सुनत ही, विष छांडत है व्याल ॥ २९ ॥
अवगुन करता और ही, देत और को मार ।
चल्यौ नहीं वश शंभु सों, जारत विरहिन मार ॥ ३० ॥
अपनावत अजहूँ न जे, अपने अंग अछूत ।
क्या करि ह्वै हैं छूत वे, करि कारी करतूत ॥ ३१ ॥
अधिक दुखी लखि आपतें दीजै दुख विसराय ।
धरमराज को दुख हरो, मुनि नल विपत्ति बताय ॥ ३२ ॥
अरब खरब तक द्रव्य है, उदय अस्त तक राज ।
जो तुलसी निज मरण है, तो आवे किस काज ॥ ३३ ॥
अमित काल साधन कियो, फल नहिं परो लखाय ।
छिद्र-युक्त कहु गेंद में, वायु कहां ठहराय ॥ ३४ ॥
अति अगाध जल-वास लहि, रोहित मन न विचार ।
चुल्लू-जल सफरी-परी, फुदकत बारहि बार ॥ ३५ ॥

अविश्वास खूंटा बँधी, ऋषि साधक-मन नाव ।
खेवत तप पतवार लै, पहुँचै कहाँ बताव ॥ ३६ ॥
अतुलित महिमा वेद की, तुलसी किएँ बिचार ।
जिहि कारण निंदत भयो, विदित बुद्ध अवतार ॥ ३७ ॥
अबहि न इच्छा सो कबहुँ, करहिं जे पर उपकार ।
पुनि परवस पसु विटप करि, करवै है करतार ॥ ३८ ॥
अवगुन कहूँ शराब का, आपा अहमक होय ।
मानुष से पशुता करे, दाम गांठ से खोय ॥ ३९ ॥

—: आ :—

आप मिटाये हरि मिलै, हरि मेटे सब जाय ।
अकथ कहानी प्रेम की, काहूँ न कोइ पतिआय ॥ १ ॥
आयौ आपति काल मँह, कहुँ काहू के काम ।
आप सह्यो सन्ताप कहुँ, दं औरहिं आराम ॥ २ ॥
आप कष्ट सहि और की, शोभा करत सपूत ।
चरखी पींजन चरख खिच, जग ढांकत ज्यों सूत ॥ ३ ॥
आडम्बर तजि कीजियै, गुन संग्रह चित चाय ।
छीर रहित न विकै गऊ, आनी घंट बँधाय ॥ ४ ॥
आप तरै तारै पथिक, काठ नाव चित चाव ।
बूढ़ै बोरै और को, ज्यों पत्थर की नाव ॥ ५ ॥
आगि लगी आकाश में, झरि झरि परत अँगार ।
कबिरा जरि कंचन भया, काँच भया संसार ॥ ६ ॥
आप बसाते सज्जना, नेह न दीजे जान ।
नेही तिल नेहै तजे, खरि है जात निदान ॥ ७ ॥
आपुहि मद को पान कर, आपुहि होत अचेत ।
तुलसी विविधि प्रकार को, दुख उतपति एहि हेत ॥ ८ ॥

आपुन करतब आपु लखि, सुनि गुनि आपु विचार ।
अन्य न कोउ दुख दै सकै, सुखदा सुमति अकार ॥ ९ ॥
आवतु आपु विनासु तह, जहँ विलसतु सु विलासु ।
एक प्राण ह्वै देह मनु, उभय विलासु विनासु ॥ १० ॥
आज कहूं तौ कल्हि कहुँ, नाहिं एक विश्राम ।
करतु सिंह सम सूरमा, ठौर-ठौर निज ठाम ॥ ११ ॥
आप बुरे जग है बुरौ, भलौ भले जग जानि ।
तजत बेर की छाँह सब, गहत आम की आनि ॥ १२ ॥
आप अनेकन हू किये, नहिं मानहि दुष्कर्म ।
होतै विधवा व्याह पै, जात रसातल धर्म ॥ १३ ॥
आव नहीं आदर नहीं, नैनन नहीं सनेह ।
तुलसी तहाँ न जाइये, कंचन बरसे मेह ॥ १४ ॥
आपु-आपु कह सब भलो, अपना कह कोइ-कोइ ।
तुलसी सब कह जो भलो, सुजन सराहिय सोइ ॥ १५ ॥
आगी लगी समुद्र में, धुआँ प्रगट ना होय ।
सो जाने जो जरमुआ, जाको लाई होय ॥ १६ ॥
आवत गाली एक है, उलटत होय अनेक ।
कहै कबीर ना उलटिये, वाहि एक की एक ॥ १७ ॥
आज कि काल्हि कि पाँच दिन जंगल होगा वास ।
ऊपरि ऊपरि हल फिरै, ढोर चरेंगे घास ॥ १८ ॥
आप करै उपकार अति, प्रति उपकार न चाह ।
हियरो कोमल सन्त सम, सुहृद सोइ नर नाह ॥ १९ ॥
आप न काहू काम के, डार पात फल मूर ।
औरन को रोकत फिरै, रहिमन कूर बबूर ॥ २० ॥

———

—: इ :—

इकलो आयो जगत में इकले ही सब जायँ ।
आप भलाई कीजिये कोई नहीं सहायँ ॥ १ ॥
इन दोउन ते बचि रहे सोई चतुर सुजान ।
राज बिगारे धन हरे, वैद बिगारे प्रान ॥ २ ॥
इतै लगावत और कुछ उतै कहत कुछ और ।
रहिमन ऐसे मनुज को नहीं नरक में ठौर ॥ ३ ॥
इत ते तो पत्थर हने आम देत फल डारि ।
कहि कबीर सोई संतगति देत सबहि फलचारि ॥ ४ ॥
"इदं न मम" कहि भेंटि मिलि करहिं सदा जो यज्ञ ।
परहित सदा विचारही सोई पुरुष दैवज्ञ ॥ ५ ॥
इस असार संसार में सत्य राम को नाम ।
जो न करै सुमिरन कबहुँ तिनहिं विधाता वाम ॥ ६ ॥
इसी जन्म के कारणँ धार्यो अमित शरीर ।
रहिमन तब हूँ राम की उठी न उरमें पीर ॥ ७ ॥
इस चोले से क्या बना, साधन, दया न धर्म ।
तन धारण कर पुरुष का किया न जो सत्कर्म ॥ ८ ॥
इन्द्रिय-वश करि राखिये धर्म अर्थ को मूल ।
बेलगाम-लिप्सा फिरै तो सब जग प्रतिकूल ॥ ९ ॥
इक समीप बसि अहित करि,इक हित कर वसि दूर ।
हंस विनासै कमल दल, अमल प्रकासै सूर ॥ १० ॥
इनको मानुष जन्म दै, कहा कियो भगवान ।
सुन्दर मुख कड़ुवे वचन, और सूम धनवान ॥ ११ ॥
इस दुनियाँ में आय कर, छोड़ देय तू ऐंठ ।
लेना होय सो जल्द ले, उठी जात है पैंठ ॥ १२ ॥

इन्द्रिय-विषय सँयोग सुख, छनिक अन्त दुख होय।
ता कारन शाश्वत सुखहि, मूरख व्यर्थ न खोय॥ १३॥

—: ई :—

ईश नहीं जिन जानियाँ किया न धर्म विचार।
संत समागम ना किया सो मतिमंद गँवार॥ १॥
ईश्वर भजन किये बिना दिये बिना कुछ दान।
बिना भलाई और की जीवित मृतक समान॥ २॥
ईश्वर तेरे भजन की महिमा अजब अनूप।
बिना भाव ते जे भजै तेउ तरैं भव-कूप॥ ३॥
ईख-मिठाई ते मधुर सुन्दर सुखद ललाम।
परंब्रह्म परमात्मा सब गुण शोभा धाम॥ ४॥
ईंधन माया-मोह का दुःख का जगत कड़ाह।
अविवेकी जन का जहाँ होत निरन्तर दाह॥ ५॥
ईश-भजन ना छोड़िये जदपि जगत प्रतिकूल।
रहिमन उनकी कृपा ते सूलहु मिटत समूल॥ ६॥
ईश-भरोसो ना तजै जो चाहे कल्यान।
सारे सुख को मूल है मालिक को गुणगान॥ ७॥
ईख दाख औ मीसरी इनते अति रसवन्त।
जिन चखिया तिन जानिया मधुर नाम भगवंत॥ ८॥
ईश भजन पुनि-पुनि करहिं ध्यावहि नित सत्संग।
माया भ्रम दुःख व्यापहीं कबहुँ न तिनके अंग॥ ९॥

—: उ :—

उत्तम जन सौं मिलत ही, अवगुन हू गुन होय।
घन संग खारो उदधि मिलि, बरसै मीठो तोय॥ १॥

उपकारी उपकार जग, सब सौं करत प्रकाश।
ज्यों कहु मधुरे तरु मलय, मलयज करत सुबास ॥ २ ॥
उत्तम जन के संग में, सहजैं हो सुख बास।
जैसे नृप लावै अतर, लेय सभा जन बास ॥ ३ ॥
उद्यम कबहुँ न छाँड़िये, पर आसा के मोद।
गागरि कैसे फोरिये, उमड़्यौ देखि पयोद ॥ ४ ॥
उद्यम बुधि बल सों मिलै, तब पावत सुख साज।
अन्ध कन्ध चढ़ि पंगु ज्यों, सबै सुधारत काज ॥ ५ ॥
उरग, तुरग, नारी नृपति, नीच जाति हथियार।
रहिमन इन्हें संभारिये, पलटत लगै न बार ॥ ६ ॥
उत्तम विद्या लीजिये, यदपि नीच पै होय।
परयौ अपावन ठौर में कंचन तजत न कोय ॥ ७ ॥
उर भीतर अति चाहना, बाहर राखत त्याग।
नारायण वा त्याग पैं, परी भार की आग ॥ ८ ॥

—: ऊ :—

ऊँच नीच को भेद जे करहिं न कर्म विचारि।
ते जन अपने धर्म को देत पंक में डारि ॥ १ ॥
ऊँचे चढ़ि डोलत फिरत धन-मद बल-मद चूर।
तुलसी ते संसार में नहीं कहावत शूर ॥ २ ॥
ऊँचे सोई जन उठैं करैं न जे अभिमान।
सदा विनयिता जे कहैं बाढ़ैं दूब समान ॥ ३ ॥
ऊसर बरसै अमित घन तऊ न उगिआ घास।
तिमि हरिजन हिय ना उठै कबहुँ काम की फाँस ॥ ४ ॥
ऊँट करै अभिमान वह जो न जाय गिरि पास।
एक बार गिरि कौं गये होत गर्व को नास ॥ ५ ॥

ऊर्ध्व उठे फिर ना गिरै यही मनुज को कर्म ।
औरन लै ऊपर उठै इससे बड़ा न धर्म ॥ ६ ॥
ऊँचे कुल में जन्म के करै नीच के काम ।
तुलसी ते संसार में भोगहिं दुष्परिणाम ॥ ७ ॥
ऊपर ते जे संत बनि हरहिं और की शील ।
दंड देत ऐसे नरहिं कबहुँ न करिये ढील ॥ ८ ॥
ऊँचे उठै चरित्र सों भले न सुत-वित होय ।
काम करै परहित सदा साधु प्रशंसै सोय ॥ ९ ॥
ऊँची जाति पपीहरा, पियत न नीचौ नीर ।
कै याचे घनश्याम सों, कै दुख सहै शरीर ॥ १० ॥
ऊँच जनम जन जे हरैं, नमि नमि कै परपीर ।
गिरिवर ते ढरि-ढरि धरनि, सींचत ज्यों नद नीर ॥ ११ ॥
ऊपर दरसै सुमिल सी, अन्तर अनमिल आँक ॥
कपटी जन की प्रीति ज्यों, नारङ्गी की फाँक ॥ १२ ॥
ऊँचे कुल क्या जन्मिया, जो करनी ऊँच न होय ।
सुबरन कलस सुराभरी, साधू निंदै सोय ॥ १३ ॥
ऊँचे पानी का टिके, नीचे ही ठहराय ।
नीचा हो सो भरे पय, ऊँचा प्यासा जाय ॥ १४ ॥

—: ए ऐ :—

एक दिन ऐसा होयगा, सब सों पड़े विछोह ।
राजा राना छत्रपति, सावधान किन होइ ॥ १ ॥
एक भले सबको भलो, देखो सबद बिवेक ।
जैसे सत हरिश्चन्द्र को, उधरे जीव अनेक ॥ २ ॥
एक बुरे सबको बुरौ, होत जगत पर कास ।
एक दुर्योधन के बुरे, सब छत्रिन को नास ॥ ३ ॥

एक - एक अक्षर पढ़े, जाने ग्रन्थ विचार ।
पेंड़-पेंड़ हू चलत जो, पहुँचत कोस हजार ॥ ४ ॥
एकै साधै सब सधै, सब साधै सब जाय ।
रहिमन सींचौ मूल को, फूलहि फलहि अघाय ॥ ५ ॥
एक बिरानो ही भलौ, जेहि सुख होत सरीर ।
जैसी बन की औषधि, हरत रोग की पीर ॥ ६ ॥
एक एक सौं लगि रह्यों, अन्नोदक सम्बन्ध ।
चोली दामन ज्यों रच्यौ, जगत जंजीरा बन्ध ॥ ७ ॥
एक धरहि घर मलिनता, अपर स्वच्छ करि जात ।
द्वै महँ कौन अछूत है, नीके निर्णहु तात ॥ ८ ॥
एक वस्तु गुन होत है, भिन्न प्रकृति के भाय ।
भटा एक को पित करत, करत एक कों बाय ॥ ९ ॥
ऐरन की चोरी करे, करे सुई को दान ।
ऊँचे चढ़-चढ़ देखते, आवत कहाँ विमान ॥ १० ॥
ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय ।
औरों को शीतल करे, आपौ शीतल होय ॥ ११ ॥
एक-एक तैं अन्त है, अन्त एक हो आय ।
एके से परचे भया, एके माँहि समाय ॥ १२ ॥
एक कनक औ कामिनी, विष फल किये उपाय ।
देखत ही ते विष चढ़े, चाखत ही मर जाय ॥ १३ ॥

—: ओ :—

ओरहि ते कोमल प्रकृति, सज्जन परम दयाल ।
कौन सिखावत कहो, राज हंस को चाल ॥ १ ॥
ओछे नर के चित में, प्रेम न पूरी आय ।
जैसे सागर कौ सलिल, गागर में न समाय ॥ २ ॥

ओछे नर की प्रीति की, दीनी रीति बताय ।
जैसे छीछर ताल जल, घटत घटत घट जाय ॥ ३ ॥
ओछी मति युवतीन की, कहें विवेक भुलाय ।
दशरथ रानी के वचन, बन पठये रघुराय ॥ ४ ॥
ओछे जनके पेट में, रहै न मोटी बात ।
आध सेर के पात्र में, सेर कभी न समात ॥ ५ ॥
ओट बडप्पन राखिये, दीपक ज्योति समान ।
लोक दिखावा किये ते, उर उपजत अभिमान ॥ ६ ॥
ओम नाम सबसे बड़ा, इससे बड़ा न और ।
इस धरती आकाश में, एक वही सिरमौर ॥ ७ ॥
ओदन आधे पेट भरि, स्वयं कमाई खाय ।
ठौर न ताकै और को, सोई संत कहाय ॥ ८ ॥
ओले बरसै शीश पै, पायँ पिरोवें शूल ।
तबहूँ धर्म न छोड़िये, लक्ष्य-प्राप्ति को मूल ॥ ९ ॥

—: औ :—

औरन बरजहि जाहि सों, आपु करत है सोय ।
ऋषियन को या जगत में, क्यों न हँसौआ होय ॥ १ ॥
औरन को मुख ताकिबो उदर पूर्ति के हेतु ।
सोजन बांधहिं आपही दुःखद नरक को सेतु ॥ २ ॥
औगुन तजिये आप ते ज्यों केंचुल ते सांप ।
तबहि मिलै भगवंत-गति, हृदय होय निष्पाप ॥ ३ ॥
औरन के सद्गुण लखै आपन लेय छिपाय ।
सोइ रहीम या जगत को सच्चा पंथ दिखाय ॥ ४ ॥
औरन के हित कारणै, होहि आपु उत्सर्ग ।
ऐसे नर को जगत में, होत कठिन संसर्ग ॥ ५ ॥

औटाये बहु औषधी, होत अधिक गुणवंत ।
बिपति कसौटी जे तपै, सोइ जन साँचे संत ॥ ६ ॥
औरन के अनुकरण में, जागृत रखै विवेक ।
सुजन आचरण अनुसरत, देर न कीजै नेक ॥ ७ ॥
और मिलैं या ना मिलैं, चलै सदा सत्पंथ ।
स्वाध्याय विन यों भलो, जो न होय सद्ग्रंथ ॥ ८ ॥

—: अं :—

अंक मिले भगवान का, भक्त फिरत निःशंक ।
दुष्ट दनुजता से ग्रसित, फँसैं पाप के पंक ॥ १ ॥
अंचल दीनानाथ का, सारे सुख का मूल ।
या पावे संसार की सब सुविधा अनुकूल ॥ २ ॥
अंजुलि भरि भरि दीजिये, जो धन संग्रह होय ।
अति संचय ते मूढ जन, देहिं सम्पदा खोय ॥ ३ ॥
अंजन आँजे आँख को, ऐल-मैल बहि जाय ।
तिमि आगे सद्गुण सदा, निर्मल होत सुभाय ॥ ४ ॥
अंचल गहिये संत को, जो चाहो कल्यान ।
तासों बचि रहिये सदा, मूढ़ नसावहिं प्रान ॥ ५ ॥
अंतर अंगुरी चार को, साँच झूँठ में होय ।
सब मानै देखी कही, सुनी न माने कोय ॥ ६ ॥

—: क :—

कहत सकल घट राम मय, तो खोजत केहि काज ।
तुलसी कहँ यह कुमति सुनि, उर आवत अति लाज ॥ १ ॥
कोटि घटन में विदत ज्यों, रवि प्रतिबिम्ब दिखाइ ।
घट घट में त्योंही छिप्यो, स्वयं प्रकाशी आइ ॥ २ ॥

कस्तूरी तन में बसै, मृग ढूँढे वन माहिं ।
ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखे नाहिं ॥ ३ ॥
कबीर माला ना जपों, जिह्वा कहो न राम ।
सुमिरन मेरा हरि करै, मैं पावो विश्राम ॥ ४ ॥
कठिन राम कौ काम है, सहज राम को नाम ।
करत राम कौ काम जे, परत राम सो काम ॥ ५ ॥
कबीर हरि के नाम सूं, प्रीति रहै इकतार ।
तौ मुख तें मोती झरे, ह रा न्त न पार ॥ ६ ॥
कबीर हँसना दूरि करि, करि रोवन सों चित ।
बिन रोये कैसे मिले, प्रेम पियारा मित्त ॥ ७ ॥
कबीर सीप समुद्र में, रटै पियास-पियास ।
समुदहि तिनका सम गिनै, स्वाँति बूँद की आस ॥ ८ ॥
कहा भयौ वन-बन फिरे, जो बनि आई नाहिं ।
बनते बनते बनि गयेउ, तुलसी घर ही माहिं ॥ ९ ॥
कह कबीर मन निर्मल भया, जैसे गङ्गा नीर ।
पीछे लागे हरि फिरत, कहत कबीर-कबीर ॥ १० ॥
कबीर एक न जानियां, बहु जाना क्या होहि ।
एकहि से सब होत है, सब ते एक न होहि ॥ ११ ॥
काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि मन में खान ।
तब लगि पंडित मूरखौ, तुलसी एक समान ॥ १२ ॥
कबीर सो धन संचिये, जो आगे को होय ।
शीस चढ़ाये पोटली, जात न देखा कोय ॥ १३ ॥
कालि करन्ता आज कर, आज करै सो हाल ।
पीछे कछु न होयगी, जो सिर आवे काल ॥ १४ ॥
कबीर धूलि समेट कर, पुड़ी जु बाँधी एह ।
दिवस चारि का पेखना, अन्त खेह ही खेह ॥ १५ ॥

कबीर सुपने रैन के, ऊघड़ि आये नैन।
जीव पड़ा बहु लूटि में, जगे तो लैन न दैन ॥ १६ ।
कहा कियौ हम आय कर, कहा कहेंगे जाय।
लाभ लेन तो दूर है, चाले मूल गँवाय ॥ १७ ॥
कबीर कहा गरबियौ, ऊँचे देखि अवास।
कल मरघट में लेटना, ऊपर जमि है घास ॥ १८ ॥
कबीर यह तन जात है, सकै तो लेहु बहोरि।
नंगे हाथों वे गये, जिनके लाख करोर ॥ १९ ॥
काची काया मन अथिर, थिर थिर काम करन्त।
ज्यों ज्यों नर निधड़क फिरै, त्यों त्यों काल हसन्त ॥ २० ॥
कौड़ी-कौड़ी जोरि कै, जोरे लाख करोर।
चलती बार न कछु मिल्यो, लई लङ्गोटी तोर ॥ २१ ॥
कबीर कहा गरबियो, काल गहै कर केस।
ना जाने कब मारिहै, कै घर कै परदेस ॥ २२ ॥
कबहु तप्यो पर ताप ते, हरी कबहु परपीर।
आसा हीन अधीर कहँ, कबहुँ बँधायो धीर ॥ २३ ॥
कहुँ अनाथ असहाय को, कीन्हीं कछुक सहाय।
पार कियो कहुँ काहु को, अपनो हाथ गहाय ॥ २४ ॥
काबा कासी त्यागि अब,' देखहु दीनन गेह।
दरिद नरायन ही जहाँ, दर्शन देत सदेह ॥ २५ ॥
कै बरसै घन समय सिर, कै भरि जनम निरास।
तुलसी याचक चातकहि, एक तिहारी आस ॥ २६ ॥
काज बिगारत आपनो, सुजन और के काज।
बलिहि निवारत नैन की, हानि सही भृगुराज ॥ २७ ॥
कबिरा सोई पीर है, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफिर बे पीर ॥ २८ ॥

कहे बचन पलटै नहीं, जो सत पुरुष सधीर।
कहत सबै हरिचन्द नृप, भरयो नीच घर नीर ॥ २९ ॥
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठग्याँ सुख ऊपजै, और ठग्याँ दुख होय ॥ ३० ॥
करै न कबहुँ साहसी, नीच पतित दुर काज।
भूख सहै पर घास को, नहीं भावै मृगराज ॥ ३१ ॥
कमला थिर न रहीम कहि, लखत अधम जे कोय।
प्रभु की सो अपनी कहैं, क्यों न फजीहत होय ॥ ३२ ॥
करै बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोइ।
बोवै पेड़ बबूल को, आम कहाँ ते होइ ॥ ३३ ॥
कष्ट परेहु साधु जन, नैक न होत मलान।
ज्यों-ज्यों स्वर्ण तपाइये, त्यों-त्यों निरमल बान ॥ ३४ ॥
कहा भयौ जो धन भयौ, गुन तें आदर होइ।
कोटि होइ उत्तम धनुष, गुन बिन गहत न कोइ ॥ ३५ ॥
कबहूँ झूठी बात को, जो करिहै पछपात।
झूठे संग झूठौ परत, फिर पाछे पछतात ॥ ३६ ॥
काशी काबे घर करै, पीवै निर्मल नीर।
मुक्ति नहिं हरि नाम बिन, यों कहे दास कबीर ॥ ३७ ॥
केशन कहा बिगाड़िया, जो मूड़ै सौ बार।
मन को काहु न मूँडिया, जामें विषय विकार ॥ ३८ ॥
काबा फिर काशी भया, राम ते भया रहीम।
मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम ॥ ३९ ॥
कांकर पाथर जोर कै; मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, बहरो भयौ खुदाय ॥ ४० ॥
कबीरा संगति साधु की, जौ की भूसी खाय।
खीर खांड भोजन मिलै, नहिं कुसङ्ग में जाय ॥ ४१ ॥

कबिरा संगत साधु की, ज्यों गन्धी की बास।
जो कुछ गन्धी दे नहीं, तोऊ बास सुबास ॥ ४२
कबीर बन-बन में फिरा, कारन अपने राम।
राम सरीखे जन मिले, तिन सारे सब काम ॥ ४३
कबीरे चन्दन के बिरे, बैठे आक पलास।
आपु सरीखे करि लिये, जे बैठे उन पास ॥ ४४
कबीर खाई कोट की, पानी पिवै न कोय।
जाय मिलै जब गंग में, सब गंगोदक होय ॥ ४५
कदली सीप भुजंग मुख, स्वांति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन ॥ ४६ ।
कहु रहीम कैसे निभै, बेर केर को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अङ्ग ॥ ४७ ॥
कर्तव्या कर्तव्य गुनि, गहै प्रशस्त विचार।
रहैं सदा सुविवेक रत, साँची शिक्षा सार ॥ ४८ ॥
केवल ग्रन्थन के पढ़े, आवागमन न जाय।
षट-रस भोजन लखें ते, बिन खाये न अघाय ॥ ४९ ॥
कोउ बिन देखे बिन सुने, कैसे सकै विचार।
कूप भेक जाने कहा, सागर को विस्तार ॥ ५० ॥
कल्पवृक्ष को चित्र लिखि, कीन्हे विनय हजार।
वित्त न पाइय ताहि सों, तुलसी देखु विचार ॥ ५१ ॥
कै जूझिवौ कै बूझिवौ, दान की काय कलेस।
चारि चारु परलोक पथ, जथा जोग उपदेश ॥ ५२ ॥
का भाषा का संसकृत, भाव चाहिए सांच।
काम तो आवै कामरी, कालै करिय कमाच ॥ ५३ ॥
कहिये तासों जो हित, भली बुरी हू जाय।
चोर करै चोरी तऊ, सांच कहे घर जाय ॥ ५४ ॥

कहा बड़े छोटे कहा, जहँ हित तहँ चित लागि ।
हरि भोजन किय विदुर घर, दुरयोधन को त्यागि ॥ ५५ ॥
कोऊ है रुचि को कहै, ह्वै ताही सो हेत ।
सबै उड़ावत काक कौं, पै विरहिन वलि देत ॥ ५६ ॥
कहै रसीली बात सो, विगरी लेत सुधारि ।
सरस लौन की दाल में, ज्यों नीबू रस डारि ॥ ५७ ॥
काहू कौ हँसिये नहीं, हँसी कलह की मूल ।
हाँसी ही ते ह्वै गयौ, कुल कौरव निरमूल ॥ ५८ ॥
कबीर नवै सो आपको, परको नवै न कोय ।
डालि तराजू तोलिये, नवै सो भारी होय ॥ ५९ ॥
कविरा गर्व न कीजिये, अस जीवन की आस ।
टेसू फूलै दिवस दस, खंखर भया पलास ॥ ६० ॥
कोऊ न सुख दुख देत है, देत करम झकझोर ।
उरझै सुरझै आप ही, ध्वजा पवन के जोर ॥ ६१ ॥
कार्य करे नहीं दोष-भय, कायर की पहिचान ।
भोजन तजता कौन जन, अनपच कर डरमान ॥ ६२ ॥
कठिन कला हू आइ है, करत करत अभ्यास ।
नट ज्यों चालतु वरत पर, साधि वरस छै मास ॥ ६३ ॥
कन कन जोरे मन जुरै, खाते निवरै सोय ।
बूंद-बूंद सों घट भरै, टपकत वीतै तोय ॥ ६४ ॥
कारज धीरे होत है, काहे होत अधीर ।
समय पाय तरुवर फरै, केतिक सींचौ नीर ॥ ६५ ॥
करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान ।
रसरी आवत जात तें, सिल पर होत निसान ॥ ६६ ॥
कबिरा धीरज के धरे, हाथी मन भर खाय ।
टूक एक के कारने, स्वान घरै घर जाय ॥ ६७ ॥

कबहू रन विमुखी भयौ, तउ फिर लरै सियाइ।
कहा भयौ काहू समै, भाग्यौ तऊ वराह ॥ ६८ ॥
कछु कहिं नीच न छेड़िये, भलौ न वाको सङ्ग।
पाथर डारे कीच में, उछरि बिगारै अङ्ग ॥ ६९ ॥
कहा करै आगम-निगम, जो मूरख समझै न।
दरपन को नहि दोष कछु, अंध बदन देखै न ॥ ७०
कबहुँ दिवस महं निबिड़ तम, कबहुक प्रकट पतंग।
बिनसइ उपजइ ज्ञान जिमि, पाई कुसंग सुसंग ॥ ७१
कारज सोई सुधरि है, जो करिये समभाय।
अति बरसै बरस बिना, ज्यों खती कुम्हलाय ॥ ७२
कहा करै कोऊ जतन प्रकृति न बदलै जोइ।
सानै सदा सनेह में, जीभ न चिकनी होइ ॥ ७३।
काम परे ही जानिए, जो नर जैसो होय।
बिन ताये खोटौ खरौ, गहनौ लखै न कोय ॥ ७४ ॥
क्यों करिये प्रापति अलप, जामें श्रम अति होइ।
कान जु गिरिवर खोद के, चूहो काढै जोइ ॥ ७५ ॥
कै समसौं कै अधिक सों, लरिये करिये वाद।
हारे जीते होत है, दोऊ भांति सम्वाद ॥ ७६ ॥
करिये सुख को होत दुख, यह कहु कौन सयान।
वा सोने को जारिये, जासों टूटे कान ॥ ७७ ॥
को चाहै अपनो तऊ, जा सङ्ग लहिये पीर।
जैसे रोग शरीर ते, उपजत दहत शरीर ॥ ७८ ॥
कहा भयौ जो वीछड़ो, मोमन तोमन साथ।
उड़ी जाइ कित हूँ गुडी, तऊ गुडायक हाथ ॥ ७९ ॥
कलह न जानन छोटि करि, कठिन परम परिनाम।
लगत अनल लघु नीच घर, जरत धनिक धन धाम ॥ ८० ॥

कैसेहु देख बड़े न को, लघुन दीजिये डारि।
जहाँ काम आवै सुई, कहा करै तरवार ॥ ८१ ॥
कहिवौ कछु करिवौ कछू है जग की विधि दोय।
देखन के अरु खान के, अलग दन्त गज होंय ॥ ८२ ॥
करो सदाचित चेत करि, उचित नारि सम्मान।
सब प्रकार सम्पत्ति युत, होगे सुखी महान ॥ ८३ ॥
कलिजुग ही में मैं लखा, अति अचरज मय बात।
होत पतित पावन पतित, छुवत पतित कौ गात ॥ ८४ ॥
काम क्रोध मद लोभ की, जौलों मन में खान।
तौलों पण्डित मूरखों, तुलसी एक समान ॥ ८५ ॥
करे बुराई सुख चहे, कैसे पावै कोइ।
रोपै पेड़ बबूल को, आम कहाँ ते होइ ॥ ८६ ॥
कै निदरहु कै आदरहु, सिहहिं श्वान सियार।
हरष विषाद न केसरिहिं, कुंजर गंज निहार ॥ ८७ ॥
काम बिगाड़े भक्ति को, ज्ञान बिगाड़े क्रोध।
लोभ विराग बिगाड़ दे, मोह बिगाड़े बोध ॥ ८८ ॥
कुटिल बचन सब से बुरा, जार करै तन छार।
साधु बचन जलरूप है, बरसै अमृत धार ॥ ८९ ॥
कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करे कोइ शूरमा, जात बरन कुल खोय ॥ ९० ॥
कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान बड़ाई ईर्षा, दुर्लभ तजनी येह ॥ ९१ ॥
कथनी कथ केते गये, कर्म उपासन ज्ञान।
नारायण चारों युगन, करणी है परमान ॥ ९२ ॥
काम-बीज मन खेत में, उगै सोइ जग होय।
दुःख मूल माया यहै, नाशै बिरला कोय ॥ ९३ ॥

काम-क्रोध अरु लोभ के, सन्निपात सब लोग।
करुये को मीठो कहैं, सुखद बतावै भोग॥ ६४
का अचरजु जो देह से, प्रान-वायु कढ़ि जाय।
छिद्र-युक्त या सदन में, अचरज यह ठहराय॥ ६५
कलिजुग में इक संगठन, सब सिद्धन की मूल।
पूरैं अपनी कामना, सबै रहै अनुकूल॥ ६६
कागा काको धन हरे, कोयल काको देत।
मीठे शब्द सुनाय के, जग अपना कर लेत॥ ६७
कहता हूँ कह जात हूँ, कहा जो मान हमार।
जाको गला तुम काटि हो, वह काटि है तुम्हार॥ ६८
कण्ट-कष्ट ह्वै परत गिरि, शाखा सहस खजूर।
गरहिं कु नृप करि-करि कुनय, सो कुचालि भुवि भूरि॥ ६६
कहा किया हम आय के, कहा कहेंगे जाय।
इत के भये ना उत के, चले गये मूल गंवाय॥ १००॥
करता था सो क्यों किया, अब क्यों कर पछताय।
बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ से खाय॥ १०१॥
काल काल तत्काल है, बुरा न करिये कोय।
अन बोवे लुनता नहीं, बोवै लुनता होय॥ १०२॥
कंचन दिया करन ने, द्रोपदी दीना चीर।
जो दीना सो पाइया, ऐसे कहें कबीर॥ १०३॥
कबीर लोहा एक है, गढ़ने में है फेर।
ताही का बख्तर बना, ताही की समसेर॥ १०४॥
काम क्रोध अरु लोभ मद, मिथ्या छल अभिमान।
इन से मन कौं रोकिबो, साँचौ व्रत पहिचान॥ १०५॥
करनी बिन कथनी कथै, अज्ञानी दिन रात।
कूकर जिमि भूँकत फिरै, सुनी सुनाई बात॥ १०६॥

करो त्याग नाना कपट, मन हरि पद अनुराग।
सोवत बीते काल बहु, महा मोह निशि जाग ॥ १०७ ॥
क्या मुख ले बिनती करूँ, लाज न आवत मोहि।
तुव देखत अवगुण करूँ, कैसे भाऊँ तोहि ॥ १०८ ॥
करम वचन मन छाड़ि छलु, जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुख सपनेहूँ नहीं किये कोटि उपचार ॥ १०९ ॥
काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह में अति दारुन दुखद, माया रूपी नारि ॥ ११० ॥
कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम, कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग ॥ १११ ॥
कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भए सदग्रन्थ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि, प्रगट किए बहु पंथ ॥ ११२॥
कबीर कहा गरबियौ, काल गहै कर केस।
ना जानौं कहाँ मारसी, कै घर कै परदेस ॥ ११३ ॥
कबीर कहा गरवियौ, देही देखि सुरंग।
बीछड़ियाँ मिलिबौ नहीं, ज्यों काँचली भुवग ॥ ११४ ॥
काँची काया मन अथिर, थिर-थिर काज करंत।
ज्यों ज्यों नर निधड़क फिरत, त्यों त्यों काल हसंत ॥ ११५ ॥
कहि रहीम सपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
बिपति कसौटी जे कसे, तेई साँचे मीत ॥ ११६ ॥
करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सिहाय।
रे गन्धी मति अन्ध तू, अतर दिखावत काहि ॥ ११७ ॥
कथनी मीठी खाँड़ सी, करनी बिष की लोय।
कथनी तजि करनी करै, विष से अमृत होय ॥ ११८ ॥
कबिरा नवै सो आप को, पर को नवै न कोय।
घालि तराजू तौलिये, नवै सो भारी होय ॥ ११९ ॥

कुटिल बचन सब से बुरा, जारि करै तन छार।
साधु बचन जल रूप है, बरसे अमृत धार ॥ १२० ॥
काम क्रोध अरु लोभ मद, मिथ्या छल अभिमान।
इनसे मन को रोकिबो, साँचो व्रत पहिचान ॥ १२१ ॥
करमठ कठमलिया कहै, ज्ञानी ज्ञान-विहीन।
तुलसी त्रिपथ विहायगो, राम-दुआरे दीन ॥ १२२ ॥
कहिवे कहँ रसना रची, सुनिवे कहँ किय कान।
धरिबे कहँ चित हित सहित, परमारथहि सुजान ॥ १२३ ॥
काम, क्रोध, लोभादि का, किया जिन्होंने अन्त।
है प्रकाश संसार में, वे ही सच्चे सन्त ॥ १२४ ॥
कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय ॥ १२५ ॥
कहु रहीम केतिक रही, केती गई बिहाय।
माया ममता मोह पर, अन्त चले पछिताय ॥ १२६ ॥
कहि रहीम या पेट तें, क्यों न भयो तू पीठि।
रीते अनरीते करत, भरे बिगारत दीठि ॥ १२७ ॥
कूप खनहिं मन्दिर जरत, लावहिं धार बबूर।
बोये लुन चह समय बिन, कुमति शिरोमणि कूर ॥ १२८ ॥
काल तोपची तुपक महि, दारू अनय कराल।
पाप पलीता कठिन गुरु, गोला पुहुमी पाल ॥ १२९ ॥

—: ख :—

खल सज्जन सूचीन के, भाग दुहूँ सम भाय।
निगुन प्रकासै छिद्र कों, सगुन सु ढांपत जाय ॥ १ ॥
खाली लज पूरन पुरुष, जेहि सब आदर देत।
रीतौ कुआ उसारिये, ऐंच भरयो घट लेत ॥ २ ॥

खंड खंड ह्वै जाय वरु, देतु न पाछें पेंड़ ।
लरत सूरमा खेत को, मरत न छाँड़त मेंड़ ॥ ३ ॥
खल खंडन, मंडन सुजन, सरल, सुहृद सविवेक ।
गुण गँभीर रण सूरमा, मिलनु लाख मँह एक ॥ ४ ॥
खाय न खरचै सूम धन, चोर सवै लै जात ।
पीछै ज्यों मधु मच्छिका, हाथ मलै पछतात ॥ ५ ॥
खीरा कौ मुँह काटिये, मलिये नौन लगाय ।
रहिमन करुवे मुखन को, चहिये यही सजाय ॥ ६ ॥
खल सो कहिय न गूढ़ तत, होहि कतहु अति मेल ।
यों फैले जग मांहि ज्यों, जल पर बूंद कि तेल ॥ ७ ॥
खाय पकाय लुटाय के, करील अपना काम ।
चलती बिरिया अरे नर, संग न चले छदाम ॥ ८ ॥
खग मृग मीत पुनीत किय, वनहुँ राम नय पाल ।
कुमति बालि दसकंठ घर, सुहृद बन्धु कियो काल ॥ ९ ॥
खेह उड़ावत सीस पर, कहु रहीम किह काज ।
जिहि रज मुनि पत्नी तरी, तिहि ढूँढ़त गजराज ॥ १० ॥

—: ग :—

गंगा यमुना सरस्वती, सात सिन्धु भरि पूरि ।
तुलसी चातक के मते, बिना स्वाँती सब धूरि ॥ १ ॥
गावन में रोवन अहै, रोवन में ही राग ।
एक वैरागी ग्रही में, एक ग्रही वैराग ॥ २ ॥
गरल वृक्ष संसार में, दोइ फल उत्तम सार ।
स्वाध्याय रस पान पुनि, सत संगति सुख सार ॥ ३ ॥
गहत तत्व ज्ञानी पुरुष, बात विचार-विचार ।
मथनि हारि तजि छाछ कों, माखन लेत निकारि ॥ ४ ॥

ग्रन्थ कीट बनि व्यर्थ क्यों, करत सुबुद्धि विनास।
खोलहु द्वार दिमाग के. पावहु पुण्य प्रकास ॥ ५ ॥
गुन वारौ संपति लहै. बिन गुन लहै न कोय।
काढ़ै नीर पताल तें, जो गुन युत घट होय ॥ ६ ॥
गुन ते संग्रह सब करैं, कुल न बिचारैं कोय।
हरि हूँ मृग मद को तिलक, करत लेत जग सोय ॥ ७ ॥
गुनी तऊ अवसर बिना, संग्रह करै न कोय।
हिय ते हार उतारिये, सयन समय जब होय ॥ ८ ॥
गुन ही तेऊ मनाइये, जो जीवन सुख भौन।
आगि जरावत नगर तऊ, आगि न लावत कौन ॥ ९ ॥
गुन ते लेत रहीम जन, सलिल कूपते काढ़ि।
कूपहुँ ते कछु होत है, मन काहू कौ बाढ़ि ॥ १० ॥
गूढ़ मत्र तौं लौं रहै, जौलौं जानें दोय।
परै पांचवे कान में, जानि जात सब कोय ॥ ११ ॥
गूढ़ मंत्र गरुवे बिना, कोई राखि सक न।
स्वर्ण पात्र बिन और पैं, बाघिन दूध रहै न ॥ १२ ॥
गिरिये पर्वत शिखर से, पड़िये धरणि मझार।
दुष्ट संग नहिं कीजिये, डूबे काली धार ॥ १३ ॥
ग्रन्थ पंथ सब जगत के, बात बतावत तीन।
राम हृदय मन में दया, तन सेवा में लीन ॥ १४ ॥
गुन आवत अति कठिनई, ऋषि जानत सब कोय।
अति श्रम सों गेहूँ फरै. घास आपु ही होय ॥ १५ ॥
गुणवन्ता और द्रव्य से, प्रीति करें सब कोय।
कबिरा प्रीति वं जानिये, इनसे न्यारी होय ॥ १६ ॥
गाठी होय सो हाथ कर, हाथ होय सो देह।
आगे हाट न बानिया, लेना होय सो लेय ॥ १७ ॥

गढ़ गढ़ के बातें कहै, मन में तनक न प्रीति ।
नारायन कैसे मिलै, साहब सांचे मीत ॥ १८ ॥
गाली सों सब ऊपजै, कलह कष्ट औ मीच ।
हार चलै सो सन्त है, लाग मरै सो नीच ॥ १६ ॥
गुरु गोबिन्द दोऊ खड़े, काके लागौं पांय ।
बलिहारी गुरु आपने, गोबिन्द दियौ बताय ॥ २० ॥
गोधन गजधन बाज धन, और रतन धन खान ।
जब आवै सन्तोष धन सब धन धूरि समान ॥ २१ ॥

—: घ :—

घट बढ़ कहीं न जानिये, ब्रह्म रहा भरपूर ।
जिन जाना तिन निकट है, दूरि कहैं ते दूर ॥ १ ॥
घीव दूध में रमि रह्या, व्यापक ही सब ठौर ।
दादू बकता बहुत हैं, मथि काढैं ते और ॥ २ ॥
घटति-बढ़ति सम्पति सुमति, गति व्यवहारिय जोय ।
रीती घटिका भरति है, भरी सु रीती होय ॥ ३ ॥
घर को घर कहते नहीं, घरनी ही घर जान ।
घरनी बिना मसान सम, घर जानो 'मतिमान ॥ ४ ॥
घर की देवी तुष्ट तो, रमते देव सदैव
दूर न कर सकते कभी, सुख सम्पति को दैव ॥ ५ ॥
घर घर घूमैं देवता, राक्षस मौज उड़ाहिं ।
ठौर ठौर या होत पै, दुनियां देखै नाहिं ॥ ६ ॥
घरनी घर की लक्ष्मी, पै सुशील जो होय ।
जे न आचरहिं शुभ्र गुन, सो नाशैं कुल दोय ॥ ७ ॥
घटत बढ़त ज्यों चन्द्रमा, त्यों सुख दुःख को खेल ।
सोई सहिष्णु सोई शूरमा, जाहिं विपति जे झेल ॥ ८ ॥

—: च :—

चलौ चलौ सब कोइ कहैं, मोहि अँदेसा और ।
साहब सूं परचा नहीं, ये जाइ हैं किस ठौर ॥ १
चाल चलौ जग में वही, जिससे बनो महान ।
सजग बने बन जाउगे, पावोगे सम्मान ॥ २
चतुर आपनौ और कौ, साधत काज सतोल ।
अङ्गद अपनौ राम कौ, काज कियो अनमोल ॥ ३
चंदन तरु कौ यदपि विधि, फल और फूल न दीन ।
तजत अहो निज तन करन, औरन ताप विहीन ॥ ४
चिरजीवो तन हू तजे, जाकौ जग जस वास ।
फूल गये हू फूल को, रहे तेल में वास ॥ ५
चुरट चाटतो है हियो, रंग करै बद रंग ।
गांजा और अफीम ये, करें देह अन ढङ्ग ॥ ६ ॥
चलिये पैंड़े सोच के, सांई सांच सुहाय ।
साँचैं जरै न आग तें, झूठौ ही जरि जाय ॥ ७ ॥
चप चप चलती ही रहै, नर लबार की जीह ।
चल हल दल जैसे चपल, चलत रहे निसि दीह ॥ ८ ॥
चलै जु पंथ पिपीलिका, पहुँचे सागर पार ।
आलस में बैठो गरुड़, पड़ौ रहे मन मार ॥ ९ ॥
चलत महाजन जा सुपथ, सो अनुसरत जहान ।
धन्य युवक जो आप ही, करै स्वपथ निर्मान ॥ १० ॥
चहल पहल अवसर परे, लोक रहत वर घोर ।
ते फिर दृष्टि न आवही, जैसे फसल बटोर ॥ ११ ॥
चारा प्यारा जगत में, छाला हित कर लेय ।
ज्यों रहीम चारा लगे, त्यों मृदगं स्वर देय ॥ १२ ॥

चढ़त न चातक चित्त कबहुँ प्रिय पयोद के दोष ।
तुलसी प्रेम पयोधि की, ताते नाप न जोख ॥ १३ ॥
चलो चलो सब कोइ कहै, पहुँचे बिरला कोय ।
एक कनक औ कामनी, दुर्गम घाटी दोय ॥ १४ ॥
चाह मिटी चिन्ता गई, मनुआ बे परवाह ।
जिनको कछू न चाहिये, सोई शाहनशाह ॥ १५ ॥
चाकर है मन आपुनो, इन्द्रिय दासी तासु ।
क्रीत-दास तिन कर बने, यह देखौ उपहास ॥ १६ ॥
चार वेद षट शास्त्र में, बात मिली है दोय ।
दुख दीने दुख होत है, सुख दीने सुख होय ॥ १७ ॥
चलती चाकी देखि के, दिया कबीरा रोय ।
दो पाटन के बीच में, साबित रहा न कोय ॥ १८ ॥
चले हरषि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि ।
जिमि हरि भगति पाइ श्रम, तजहिं आश्रमी चारि ॥ १९ ॥
चींटी से हस्ती तलक, जितने लघु गुरु देह ।
सब कौं सुख दैबो सदा, परम भक्ति है येह ॥ २० ॥
चले जाहु यहाँ को करै, हाथिन को व्यौहार ।
नहिं जानत यह पुर बसत, धोबी और कुम्हार ॥ २१ ॥
चित्रकूट में रम रहे, रहिमन अवध नरेश ।
जापै बिपता परत है, सोई आवत यहि देश ॥ २२ ॥

—: छ :—

छोटेन सों सोहैं बडे, कहि रहीम यह रेख ।
सहसन को हय बाँधियत, लै दमरी की मेख ॥ १ ॥
छल बल, धर्म अधर्म करि, अरि नासिए अभीति ।
भारत में अर्जुन किसन, कहा कही बुध नीति ॥ २ ॥

छोटे अरि कों साधि कै, छोटौ करि उपचार।
मरै न मूसा सिंह तें, मारै ताहि मजार ॥ ३ ॥
छीर रूप सतनाम है, नीर रूप व्यवहार।
हंस रूप कोई साध है, तत का छानन हार ॥ ४ ॥
छिमा बड़ेन को चाहिए, छोटिन को उतपात।
कहा रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात ॥ ५ ॥
छमा खड्ग लीने रहै, खल को कहा बसाय।
अगिन परी तृन रहित थल, आपहि ते बुझि जाय ॥ ६ ॥
छोटे ह्वै रहिये सदा, करिये मत अभिमान।
इतराये ते ना बचे, रावण कर्ण समान ॥ ७ ॥
छूटि जायगौ एक दिन, धरा धाम संसार।
देर न करियो ताहि सों, अपनो भलो विचार ॥ ८ ॥

—: ज :—

ज्यों नैनन में पूतली, त्यों खालिक घट माहि।
मूरख लोग न जानहीं, बाहर ढूँढन जाहि ॥ १ ॥
जदपि रह्यौ है भावतौ, सकल जगत भरपूर।
बलि जैये वा ठौर की, जहँ ह्वै करै जहूर ॥ २ ॥
जो जन प्रेमी राम के, तिनकी गति है येह।
देही से उद्यम करें, सुमिरन करें विदेह ॥ ३ ॥
जो रोऊँ तौ बल घटे, हंसौं तो राम रिसाय।
मन ही माहिं विसूरना, ज्यों घुनि काठहि खाय ॥ ४ ॥
जो पै जैसी होइ तेहि, तैसो ही मिल जाय।
मिले गठकटा चोर कों, साहहि साह मिलाय ॥ ५ ॥
जोति सरूपी हिय सबै, सब सरीर में जोति।
दीपक धरिये ताक में, सब घर आभा होति ॥ ६ ॥

जेहि जेतो निहचै तितौ, देत दई पहुँचाय ।
सक्कर खोरे को मिलै, जैसे सक्कर आय ॥ ७ ॥
जे गरीब सों हित करें, धनि रहीम वे लोग ।
कहा सुदामा बापुरौ, कृष्ण मिताई योग ॥ ८ ॥
जो तोको कांटा बुवै, ताहि बोइ तू फूल ।
तोकों फूल के फूल के फूल हैं, वाकौ हैं तिरसूल ॥ ९ ॥
जब देखौ तब भलेन तें, सजन भलाई होइ ।
जारैं-जारैं अगर ज्यों, तजत नहीं खुस बोइ ॥ १० ॥
जो बड़ेन कों लघु कहौ, नहिं रहीम घटि जाहि ।
गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुखथावत नाहिं ॥ ११ ॥
जो जितनी सेवा करे, ताकी तिती बड़ाय ।
काम करें सब जगत के, ताते त्रिभुवन राय ॥ १२ ॥
जग की सारी सम्पदा, धर्म विना निःसार ।
लवन विना जैसे बनो, व्यंजन विविध प्रकार ॥ १३ ॥
जो पै जग खेले बिना, मिलै न यश, धन, मीत ।
काजल मँहदी, दीप ये, बता रहे परतीत ॥ १४ ॥
जूआ खेलै होत है, सुख सम्पति कौ नास ।
राज काज नल कौ छुटौ, पाण्डव कियौ वनवास ॥ १५ ॥
जीवन मरण बिचार कै, बिगड़े काम निवारि ।
जिस पथ से चलना तुझे, सोई पंथ सँभारि ॥ १६ ॥
जो प्रानी परबस परयौ, सो दुख सहत अपार ।
जूथ बिछोही गज सहै, बन्धन अंकुस मार ॥ १७ ॥
जहाँ रहे गुनवन्त नर, ताकी शोभा होत ।
जहाँ धरै दीपक तहाँ, निहचै करै उदोत ॥ १८ ॥
जाकी साँचो सुरति है, ताका साँचा खेल ।
आठ पहर चौंसठ घड़ी, है सांई सौ मेल ॥ १९ ॥

जग परतीत बढ़ाइये, रहिये साँचे होय ।
झूठे नर की साँच हूँ, साखि न मानै कोय ॥ २०
जहाँ सुजन तह प्रीति है, प्रीत तहाँ सुख ठौर ।
जहाँ पुष्प तहाँ बास है, जहाँ बास तहँ भौर ॥ २१
जाति न पूछे साधु की, पूछि लीजिये ज्ञान ।
मोल करो तरबार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥ २२
जैसी संगति तैसई, इज्जत मिलि है आय ।
सिर पै मखमल सेहरै, पनही मखमल पाय ॥ २३ ।
जैसे थानक सेइए, तैसौं पूरें काम ।
सिंह गुफा मुक्ता मिलैं, स्यार खुरी खुर चाम ॥ २४ ।
जाने हृदय कठोर तेहि, जगैं न हित के बैन ।
मैन वान जो पथर में, क्यों हू किये भिदैन ॥ २५ ।
जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग ।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग ॥ २६ ।
जुदे जुदे नहिं लहत कछु, मिले विरंगहु रंग ।
कत्था संग चूना परत, होत लाल मिलि संग ॥ २७ ।
जिहि प्रसंग दूषन लगै, तजिए ताकौ साथ ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलाली हाथ ॥ २८ ॥
जाके संग दूषन दुरै, करिए तिहि पहिचान ।
जैसे समझैं दूध सब, सुरा अहीरी पानि ॥ २९ ॥
जिहिं देखैं लाञ्छन लगै, तासौं दृष्टि न जोर ।
ज्यों कोई चितवै नहीं, चौथ चन्द की ओर ॥ ३० ॥
जन्मत ही पावे नहीं, भली बुरी कोउ वात ।
बूझत-बूझत पाइये, ज्यों ज्यों समुझत जात ॥ ३१ ॥
जहाँ ज्ञान तहँ धर्म है, जहाँ झूठ तहाँ पाप ।
जहाँ लोभ तहँ काल है, जहाँ क्षमा तहँ आप ॥ ३२ ॥

जड़ चेतन गुन दोष मय, विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गन गहहि, परिहरि वारि विकार ॥ ३३ ॥
जाँच किये बिन और को, बात सांच मति थर्प।
होत अँधरी रैन में, परी जेवरी सर्प ॥ ३४ ॥
जाकों बुधि बल होत है, ताहि न रिपु को त्रास।
घन बूँदें का करि सके, सिर पर छतना जास ॥ ३५ ॥
जामें हित सो कीजिए, कोऊ कहौ हजार।
छल बल साधि विजै करो, पारथ भारत वार ॥ ३६ ॥
जाहि मिलै सुख होतु है, ता बिछुरे दुख होय।
सूर उदै फूलै कमल, ता बिन सकुचै सोय ॥ ३७ ॥
जेहि रहीम तनमन मिलो, कियौ हिये बिच भौन।
तासौं दुख सुख कहन की, रही बात अब कौन ॥ ३८ ॥
जा घट प्रेम न संचरै, सो घट सदा मसान।
जैसे खाल लुहार की, सांस लेत बिन प्रान ॥ ३९ ॥
जो जाकी रुचि की कहै, सो ताके अभिराम।
पिय आगम भाषी भलौ, वायस पिक केहि काम ॥ ४० ॥
जब लग जोगी जगत गुरु, तब लग रहै निरास।
जब आसा मन में जगी, जग गुरु जोगी दास ॥ ४१ ॥
जो जैसी करनी करै, सो तेहि लहै न और।
बनिज करै सो बानियाँ, चोरी करै सो चोर ॥ ४२ ॥
जेहि जेतौ उनमान तेहि, तेतौ रिजक मिलाय।
कन चींटी, कूकर टुकर, मन भर हाथी खाय ॥ ४३ ॥
जोरावर हू को कियौ, विधि बस करन इलाज।
दीप तमहिं अंकुश गजहिं, जल निध नरनि इलाज ॥ ४४ ॥
जाकी ओर न जाइये, कैसे मिलि है सोय।
जैसे पच्छिम दिसि गये, पूरब काज न होय ॥ ४५ ॥

जो पहले कीजै जतन, सो पीछे फलदाय।
आग लगे खोदै कुंवा, कैसे आग बुझाय ॥ ४६

जित देखौ तित बढ़ि रहे, कुल कुठार भुवि भार।
क्यों न होत पुनि आज, वह परशुराम अवतार ॥ ४७

जे न होयँ दृढ़ चित्त के, तहाँ न निवहै टेक।
ज्यों कच्चे घट में सलिल, नहिं ठहरत दिन एक ॥ ४८।

जोरि नाम संग सिंह पद, कियौ सिंह वदनाम।
ह्वै हैं क्यों करि सिंह यों, करि शृगाल कौ काम ॥ ४६।

जे जन लोभी सीस के, ते अधीन दिन दीन।
सीस चढ़ाये बिन भयो, कहो कौन स्वाधोन ॥ ५० ॥

जो मूरख उपदेश के, होते जोग जहान।
दुर्योधन कहं बोधि किन, आये श्याम सुजान ॥ ५१ ॥

जो रहीम ओछौ बढ़ै, सो अति ही इतराय।
प्यादे तें फरजी भये, टेढ़ो-टेढ़ो जाय ॥ ५२ ॥

जो विषया सन्तन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत बमन करि, स्वान स्वाद सों खात ॥ ५३ ॥

जग की सुख सम्पत्ति को, मिलौ न वारापार।
धन हीनन के हेतु ही, है संसार असार ॥ ५४ ॥

जानि बूझि अजगुत करै, तासों कहा वसाय।
जागत ही सोवत रहै, तेहि को सकै जगाय ॥ ५५ ॥

जो जेह कारज में कुसल, सो तेही भेद प्रवीन।
नद प्रवाह में गज बहै, उलटि चलै लघु मीन ॥ ५६ ॥

जैसी परै सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह।
धरती पर ही परत है, सीत घाम औ मेह ॥ ५७ ॥

जब लगि बित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय।
रहिमन अंबुज अंबु बिन, रवि नाहिन हित होय ॥ ५८ ॥

जाही तें कछु पाइये, जइये ताके पास ।
रीते सरवर पै गये, कैसे बुझत पियास ॥ ५६ ॥
जो जाकों प्यारो लगै, सो तेहि करत बखान ।
जैसे विष कों विष भखो, मानत अमृत समान ॥ ६० ॥
जो जाकौ गुन जानही, सो तिहि आदर देतु ।
कोकिल अम्बहि लेत है, काग निवौरी हेत ॥ ६१ ॥
जाको जैसो भाव सो, तैसो ठानत ताहि ।
शशिहि सुधाकर कहत कोउ, कहत कलंकी आहि ॥ ६२ ॥
जा जग की रोटीन तें, सूझत अलख अनन्त ।
मिथ्या ताकों कहत ए, निलज निठल्ले सन्त ॥ ६३ ॥
जब आता अभिमान अति, तुरत नसाता मान ।
रावण औ शिशुपाल सम, होवे यदपि महान ॥ ६४ ॥
जैसौ गुन दीनों दई, तैसो नहीं निबन्ध ।
ए दोऊ कहँ पाइए, सोना और सुगन्ध ॥ ६५ ॥
जो गुड़ दीने ही मरै, जनि विष दीजै ताइ ।
जग जिति हारे परशुधर, हारि जिते रघुराइ ॥ ६६ ॥
जहाँ क्रोध तहाँ काल है, जहाँ लोभ तहाँ पाप ।
जहाँ दया तहाँ धर्म है, जहाँ क्षमा तहाँ आप ॥ ६७ ॥
जो विचार बिन करत हैं, वे पाछे पछतायँ ।
तासों काज विचार के, तब ही कीजे तायँ ॥ ६८ ॥
जिन खोजा तिन पाइया, पारब्रह्म घट माहिं ।
यह जग बौरा हो रहा, जो इतउत ढूँढन जाहिं ॥ ६९ ॥
जब तुम जग में आये. जग हंसमुख तुम रोय ।
ऐसी करनी कर चलो, तुम हंसमुख जग रोय ॥ ७० ॥
जो प्राणी ममता तजै, लोभ मोह अहङ्कार ।
कह नानक आपुन तरै, औरन लेत उबार ॥ ७१ ॥

जाको राखे साँइयाँ, मार सके नहिं कोय।
बाल न बाँका कर सके, जो जग बैरी होय ॥ ७२ ॥
जननी जने तो भक्त जन, कै दाता कै शूर।
नाहीं तो तू बांझ रह, काहि गवांवै नूर ॥ ७३ ॥
जिनको मन निज वश भयो, तजकर विषय विलास।
नारायण ते घर रहो, करो भले बनवास ॥ ७४
ज्यों तिरिया पीहर बसै, सुरति पिया के माँहि।
ऐसे जन जग में रहै, हरि कू भूलें नाहिं ॥ ७५
जगत ब्रह्मज्ञानी बहुत, विद्या के भंडार।
निज अज्ञान जे जानहीं, ते विरले संसार ॥ ७६।
ज्यों-ज्यों पूरो कामना, त्यों त्यों बाढै चाह।
ज्यों घृत डारो आग में, दूनों लेत उछाह ॥ ७७।
जो ममता को छोड़ दे, फिर ममता को छोड़।
जो ममता छूटै नहीं, ममता सब सों जोड़ ॥ ७८।
जप-पूजा बहुतै करै, शोषण करें महान।
बाट लखै हरि दूत-की, लावै वेगि विमान ॥ ७९ ॥
जो सुख जीवन में चहै, तजै विषय की चाह।
बिन मारे या चाह के, मिले न असली राह ॥ ८० ॥
जग खुश रहै व लक्ष्य पर, हम पहुँचै हरषाय।
ये दोऊ एक साथ करि, कोउ न पार लगाय ॥ ८१ ॥
जग - रूठै - डर कारने, उचित कहत सकुचात।
ते नर कायर जगत में, करैं आपु उर घात ॥ ८२ ॥
जग रूठै रूठो करै, नहिं छोड़ै निज टेक।
ऋषि ऐसे नर शेर को, रखवारो प्रभु एक ॥ ८३ ॥
जिन खोजा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठ।
मैं बौरी खोजन चली, गई किनारे बैठ ॥ ८

जाना नहीं बूझा नहीं, समझ गया नहीं गौन।
अन्धे को अन्धा मिला, राह बतावे .कौन ॥ ८५ ॥
जिहि जिभ्या बंधन नहीं, हृदया नाहीं साँच।
वाके संग न लागिए, खाले बटिया काँच ॥ ८६ ॥
ज्यों लग दिल लागे नहीं, त्यों लग सुख नांहि।
चारों युगन पुकारिया, सो संसय दिल मांहि ॥ ८७ ॥
जग में कोई बैरी नहीं, जो मन शीतल होय।
यह आपा तो डाल दे, दया करो सब कोय ॥ ८८ ॥
जहाँ आपा तहाँ आपदा, जहाँ संशय तहाँ रोग।
कह कबीर यह क्यों मिटे, चारों वीरध रोग ॥ ८९ ॥
जो यथार्थ बल वुद्धि ते, हो न सिद्ध परिणाम।
नहिं ऐसौ कोई जगत में, कठिन कठिनतर काम ॥ ९० ॥
जे जन रूखे विषय रस, चिकने राम सनेह।
तुलसी ते प्रिय राम को, कानन बसहिं कि गेह ॥ ९१ ॥
जो न बनाया आचरण, सत्य, धर्म अनुकूल।
तो प्रकाश विद्या विभव, ज्ञान ध्यान सब धूल ॥ ९२ ॥
ज्यों तिल माही तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा साँई तुझ में, जागि सके तो जाग ॥ ९३ ॥
ज्यों नैनों में पूतली, त्यों मालिक घर मांय।
मूर्ख लोग न जानिये, बाहर ढूँढ़त जांय ॥ ९४ ॥
जा रिपु सों हारेहुँ हँसी, जिते पाप परितापु।
तासों रारि निवारिए, समय सँभारिअ आपु ॥ ९५ ॥

—: झ :—

झूठे सुख को सुख कहें, मानत है मन मोद।
खलक चबैना काल का, कछु मुख में कछु गोद ॥ १ ॥

झूठ बसे जा पुरुष में, ताही की अप्रतीत।
चोर जुआरी सों कोऊ, यातें करत न प्रीत ॥ २ ॥
झूठे हू करिये जतन, कारज बिगरै नाहिं।
कपट पुरुष धन खेत पर, देखत मृग भजि जांहि ॥ ३ ॥
झुंझलाहट सब से बरी, तासों रहिये दूर।
सब में भली सहिष्णुता, सब सुख सों भरपूर ॥ ४ ॥
झूले सुख में झूलनों, दुःख जो काटैं रोय।
तुलसी ते संसार में, नहीं विवेकी दोय ॥ ५ ॥
झूठहु सत्य समान है, जो परस्वारथ होय।
साँच कहै जो दुःख मिलै, प्रगट न करियो सोय ॥ ६ ॥
झूंठी या संसार की, माया त्यों अनुरक्ति।
सब असार कुछ सार तो, परमेश्वर की भक्ति ॥ ७ ॥
झुलरावत अँगना फिरै, करैं लाड़ बहु प्यार।
पै न सिखाया धर्म तो, पुत्र प्रेम बेकार ॥ ८ ॥

—: ट :—

टूटे मन फिर ना मिलैं, कोटिन करै उपाय।
तासों सदा हितैषि नहिं, मृदु सम्बन्ध निभाय ॥ १ ॥
टुकड़ा जे माँगत फिरत, ते नर मरे समान।
स्वयं कमाई ना करी, सो कस संत-महान ॥ २ ॥
टूक टूक होई जाय पर, लचै न किंचित मात्र।
ज्यों शीशा को काँच त्यों, डिगैं न संत सुपात्र ॥ ३ ॥
टुकुर-टुकुर देखत सबहिं, जे भिक्षा के काज।
तिनहिं पुरुष जनि जानिये, माँगत लगै न लाज ॥ ४ ॥
टीका बहुत लगावहीं, नहीं, कुकर्म को अंत।
रहिमन ऐसे मनुज को, भूलि न समझे संत ॥ ५ ॥

टुकड़ा हू सन्मान को, दौड़ि लीजिये खाय ।
बिन आदर व्यंजन मिलैं, तहाँ न भूलेउ जाय ॥ ६ ॥
टुकड़ा देय गरीब को, ताको पुन्य अपार ।
भोज देय दुष्पात्र को, सो साईं बेकार ॥ ७ ॥
टूटि जाय सम्बन्ध जे, एक बार करि प्रेम ।
तुलसी तहाँ न शील को, नहीं धर्म को नेम ॥ ८ ॥
टेढ़ जानि शंका सबहि, है न असांची बात ।
सरल भये दिन रात जो, पावहि गारी लात ॥ ९ ॥
टूका माहीं टूक दे, चीर माँहि सो चीर ।
साधू देत न सकुचियो, यों कहे सन्त कबीर ॥ १० ॥
टूटे सुजन मनाइये, जो टूटे सौ बार ।
रहिमन फिर फिर पोहिये, टूटे मुक्ता हार ॥ ११ ॥

—:ठ:—

ठौर देखि कै हूजिए, कुटिल सरल गति आप ।
बाहर टेड़ो फिरत है, बांबी सूधो साँप ॥ १ ॥
ठगि जग वैर बढ़ाय मग, जो चाहे कल्यान ।
ऐसे पुरुषहिं जानिये, बुद्धि हीन अज्ञान ॥ २ ॥
ठौर ठौर दुर्जन फिरत, बहु लोगन दुःख देत ।
अन्त समय दुःख पावहीं, स्वजन सहाय समेत ॥ ३ ॥
ठाँव-ठाँव में सन्त हैं, जो ढूँढे चितलाय ।
संत मिले ते सुख मिलै, दुर्जन ते सुख जाय ॥ ४ ॥
ठौर-ठौर दुःख पावहीं, सज्जन सुहृद सुसंत ।
दुर्जन दुष्ट मनावहीं, रास विलास बसंत ॥ ५ ॥
ठोस कर्म में श्रेय है, दम्भ दुःख का हेतु ।
रहिमन त्यागि बनावटहिं, रचहु सत्य का सेतु ॥ ६ ॥

ठुकरावै जो शरण दै, मित्रहिं धोखा देय ।
रहिमन ऐसे पुरुष को, भूलि साथ ना लेय ॥ ७ ।

—: ड :—

डरै पाप दुष्कर्म ते, और न डरिये काहिं ।
काल-गाल ते का डरं, जा मुख सबै समाहिं ॥ १ ।
डगर न छोडै प्रेम की, ऐते भली न राह ।
प्रेम बिना माँगे मिले, और न करिये चाह ॥ २ ।
डील डौल मोटा भला, पै न मनुजता साथ ।
रहिमन ऐसे मनुज ते, दूर रहै सौ हाथ ॥ ३ ।
डोलत मद में चूर जे, अपर उलीचहिं कीच ।
बेगुनाह त्रासहिं जगत, ते जन अतिशय नीच ॥ ४ ।
डोला एक दिन आयगो, जो सबही लइ जाय ।
रहिमन यो डोलहिं भला, क्यों इतनो इतराय ॥ ५ ।
डग बढ़ायवो राम ढिग, चतुराई को काज ।
तुलसी ताको अनुसरत, कबहुँ न कीजै लाज ॥ ६
डरहिं न जे पर निन्दहिं. राखहिं दृढ़ संकल्प ।
विना बिघ्न कारज सरहिं, व्याधि न व्यापै स्वल्प ॥ ७
डग बढ़ाइये फूँकि मग, जग धोखे का कूप ।
निमिष माहिं बन जो यहाँ, सुभग कर्म विद्रूप ॥ ८
डर उछाव हित धरम सों, असुभ करम की हानि ।
मन प्रसन्न रुचि अन्न सों, ज्यों ज्वर छूटै जानि ॥ ९
डरै न काहू दुष्ट सों, जाहि प्रेम की वान ।
भौंर न छांडे केतकी, तीखे कंटक जान ॥ १०
डरै न काहू दुष्ट सों, लरै लोभ तन खोय ।
करै न शंका काल की, युवक सराहिय सोय ॥ ११

—: ढ :—

ढकि रखिये नेकी निज, अन्त न जाने कोय ।
ठौर ठौर गावत फिरे, सांच न दीखै सोय ॥ १ ॥
ढूँढ़े ते मिलि जात है, सब विधि सुजन सुसंत ।
खोजे बिना समीप के, सज्जन लगैं दुरंत ॥ २ ॥
ढोल गँवार दुष्ट जन, इनहिं राखिये ताड़ि ।
इन्हें बड़ाई दिये ते, पैदा होत बिगाड़ि ॥ ३ ॥
ढकि रखिये वाणी निज, कोटि सुशीतल सोय ।
दुष्ट बीच बोले सोऊ, घृत आहुति सम होय ॥ ४ ॥
ढूँढि-ढूँढ़ि जग थक गया, मिले न पर जगदीश ।
अपने अन्तर जो छुपा, ताहि न नावहिं शीश ॥ ५ ॥
ढूँढ़िय कोटिन जतन ते, जो सदगुरु मिलि जाय ।
जासु मिले संसार को, सब भव ताप नसाय ॥ ६ ॥
ढुल मुल नीति नहीं भली, राखै दृढ संकल्प ।
सफलता को है यही, एक महान विकल्प ॥ ७ ॥
ढाक फूलिया बिजन में, सुषमा तऊ न न्यून ।
तिमि आदर पावहिं सुजन, घर बाहर दिन दून ॥ ८ ॥

—: त :—

तुलसी केवल राम पद, लागै सहज सनेह ।
तो घर घट बनबार महँ, कतहु रहे किन देह ॥ १ ॥
तन को जोगी सब करैं, मन को करै न कोय ।
सब सिधि सहजै पाइये, जो मन जोगी होय ॥ २ ॥
तू मत जाने बावरे, मेरा है सब कोय ।
पिंड प्रान से बँधि रहा, सो अपना नहीं होय ॥ ३ ।

तुलसी तीनों लोक में, चातक ही को माथ ।
सुनियतु जासु न दीनता, कियो दूसरो नाथ ॥ ४ ॥
तुलसी संत सुरम्य तरु, फूल फलहिं पर हेत ।
ये इततें पाहन हनत, वे उतते फल देत ॥ ५ ॥
तुलसी देवल देव में, लागे लाख करोर ।
काग अभागे हँग भरें, महिमा भई न थोर ॥ ६ ॥
तरुवर फूल नहिं खात हैं, सरवर पियहि न पानि ।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सँचहिं सुजान ॥ ७ ॥
तू सज्जन या बात कौ, समझि देख मन माहिं ।
अरे दया में जो मजा, सो जुलमन में नाहिं ॥ ८ ॥
त्यों रहीम सुख दुख सहत, बड़े लोग सह साँति ।
जगत चंद जेहि भांति सों, अथवत ताही भाँति ॥ ९ ॥
तुलसी साथी विपति के, विद्या विनय विवेक ।
साहस सुकरित सत्य व्रत, राम भरोसो एक ॥ १० ॥
तजौ नसा जो नासता, धन बल कल सुख शान्ति ।
दे आलस मालस करे, बुद्धि तन मन भ्रान्ति ॥ ११ ॥
तीरथ करि करि जग मुआ, डूबे पानी न्हाय ।
राम नाम जप के बिना, काल घसीटे जाय ॥ १२ ॥
तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला एक अंग ।
होहि न तासम सकल मिलि, जो सुख क्षण सतसंग ॥ १३ ॥
तुलसी सतगुरु के ग्रहहिं, आनन्दमय उपदेश ।
संसय रोग नसाय सब, पावै पुनि न कलेस ॥ १४ ॥
तिन के कारज होत हैं, जिनके बड़े सहाय ।
कृष्ण पच्छ पांडव जयी, कौरव गये विलाय ॥ १५ ॥
तन सुखाइ पंजर करै, हरै रैनि दिन ध्यान ।
तुलसी मिटै न वासना, विना विचारे ज्ञान ॥ १६ ॥

तुलसी सो समरथ सुमति, सुकृती साधु सुजान।
जो विचार व्यवहरहि जग, खरच लाभ अनुमान ॥ १७ ॥
तुलसी स्वारथ सामुहो, परमारथ तन पीठ।
अन्धे को सब कछु मिला, दोउ नयन अरु दीठि ॥ १८ ॥
तुलसी मीठे बचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरन यह मंत्र है, तज दे वचन कठोर ॥ १९ ॥
तुलसी जाने बात बिनु, बिगरत हर इक बात।
अनजाने दुख बात के, जानि परे कुसलात ॥ २० ॥
तुलसी कुपथ लीने जनित, स्वस्वभाव अनुसार।
कोऊ सिखवत नाहि शिसु, मूसक हनत मजार ॥ २१ ॥
तुलसी जो करता करम, सो भोगत नहिं आन।
जो बोवै सो काटिए, देनी लहइ निदान ॥ २२ ॥
तुलसी हरि दरबार में, कमी वस्तु कछु नाहिं।
कर्म हीन कलपत फिरत, चूक चाकरी माँहि ॥ २३ ॥
ताही को सब नवत हैं, जो जन टेढ़ौ होइ।
नमत दुतीया चन्द कों पूरन चन्द न कोइ ॥ २४ ॥
तन धन हू दै लाज के, जतन करत जे धीर।
टूक टूक ह्वै गिरत पै, नहिं मुख फेरत बीर ॥ २५ ॥
तन्त न तोरत अन्त लौं, बचन निवाहत सूर।
कहा प्रतिज्ञा पालि हैं, कपटी कादर क्रूर ॥ २६ ॥
तज हैं मरद न मेड निज, रहैं वकत बदराह।
करत न कूकर बृन्द की, कछु गयन्द परवाह ॥ २७ ॥
तुलसी निज कीरति चहहि, पर कीरति को खोय।
तिनके मुँह मसि लागि हैं, मिटहि न मरिये धोय ॥ २८ ॥
तृन हू ते अरु तूल तें, हलकौ याचक आहि।
जानत है कछु माँगि है, पवन उड़ावत नाहिं ॥ २९ ॥

तुलसी झगड़े बड़ेन के, बीच परहु जनि धाय।
लड़ें लोह पाहन तऊ, बीच रुई जरि जाय॥ ३०।

वाको त्यों समझाए, जो समझे जेहि हेत।
बानी द्वारा अंध को, बहिरे को संकेत॥ ३१।

ताकौ अरि कहा करि सकै, जाकौ जतन उपाय।
जरै न तातो रेत सों, जाके पनही पाय॥ ३२।

तुलसी काया खेत है, मनसा भयो किसान।
पाप पुन्य दो बीज हैं, बुबै सो लेइ निदान॥ ३३।

तुलसी आह गरीब की, कभी न खाली जाय।
मुये बकरे की खाल से, लौह भस्म हो जाय॥ ३४॥

तुलसी इस संसार में, मतलब का व्योहार।
जब तक पैसा गांठि में, तब लगि लाखों यार॥ ३५॥

तुलसी या संसार में, सब से मिलिये धाय।
ना जाने किस भेष में, नारायण मिल जाय॥ ३६॥

तुलसी अद्भुत देवता, आशा देवी नाम।
सेबे सोक समर्पई, विमुख भयो अभिराम॥ ३७॥

तुलसी या संसार में, तीन वस्तु हैं सार।
सत्संगति हरि भजन इक, निसदिन पर उपकार॥ ३८॥

तुलसी तरु फूलत-फलत, जा विधि कालहि पाय।
तैसेई गुण दोष ते, प्रकटत समय सुभाय॥ ३९॥

तुलसी विलंब न कीजिये, भजिये नाम सुजान।
जगत मजूरी देत है, क्यों राखे भगवान॥ ४०॥

तरुवर सरवर सन्तजन, चौथे बरसे मेह।
परमारथ के कारणे, चारों धारें देह॥ ४१॥

तेरे भावें कुछ करो, भलो बुरो संसार।
नारायण तू बैठि के, अपनो भवन बुहार॥ ४२॥

तज पर अवगुण नीर को, क्षीर गुणन सों प्रीति ।
हंस सन्त की सर्वदा, नारायण यह रीति ॥ ४३ ॥
तनिक मान मन में नहीं, सब सों राखत प्यार ।
नारायण या सन्त पै, वार-वार बलिहार ॥ ४४ ॥
तन हित मुख-कर-उदर पद, निज-निज धर्म निबाहिं ।
तिमि सप्रेम सब वर्न मिलि, जगहित कर्म कराहिं ॥ ४५ ॥
तन-मन-धन जगदीश को, सकल धरोहर जान ।
लहि औसर सौंपहु तिनहिं, जगत-बन्द-भगवान ॥ ४६ ॥
तेरा सांई तुझी में, पुहुपन में है बास ।
कस्तूरी का हिरण ज्यों, फिर फिर ढूँढ़त घास ॥ ४७ ॥
तन पवित्र सेवा किये, धन पवित्र दिये दान ।
मन पवित्र हरि भजन से, इस विधि हो कल्यान ॥ ४८ ॥
तिनको कबहूँ न निन्दिये, जो पाँव तले होय ।
कबहुँ उड़ आँखों पड़े, पीर घनेरी होय ॥ ४९ ॥
तन मन धन दे कीजिये, निशिदिन पर उपकार ।
यही सार नर देह में, वाद विवाद बिसार ॥ ५० ॥
तुलसी या जग आय कैं, पाँच रतन हैं सार ।
संत मिलन अरु हरि भजन, दया दीन उपकार ॥ ५१ ॥
तुलसी बिन गुरुदेव के, किमि जानै कहु सोय ।
जहाँ ते आयो सो है, जाय जहाँ पै सोय ॥ ५२ ॥
ताते सुर सीसन्ह चढ़त, जग बल्लभ श्रीखंड ।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परसु बदन यह दंड ॥ ५३ ॥
तात तीनि अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि बिग्यान धाम मन, करहिं निमिष महुँ छोभ ॥ ५४ ॥
तुलसी एहि संसार में, भाँति भाँति के लोग ।
सब सों हिल मिल बोलिए, नदी नाव संजोग ॥ ५५ ॥

तुलसी परिहरि हरि हरहि, पाँवर पूजहि भूत।
अंत फजीहति होहिगें, ज्यों गनिका के पूत ।। ५६

तुलसी उद्यम करम जग, जब जेहि एक सुदीठि।
होई कुफल सोइ ताहि मन, दीन्हे प्रभु तन पीठि ।। ५७ ।

तुलसी सुखी जो राम सों, दुखी सो निज करतूति।
करम बचन मन ठीक जेहि, तेहि न सकै कलि धूति ।। ५८ ।

तुलसी राम जो आदर्यो, खोटो खरो खरोइ।
दीपक काजर सिर धर्यो, धर्यो सुधर्यो धरोइ ।। ५९ ।

तनु विचित्र, कायर बचन, अहि अहार मन थोर।
तुलसी हरि भये पच्छ धर, ताते कह सब मोर ।। ६० ।।

तुलसी जा यों दशरथहिं, धरम न सत्य समान।
रामु तजे जेहि लागि बिनु, राम परिहरे प्रान ।। ६१ ।।

तुलसी देखत अनुभवत, सुनत समुझत मीचु।
चपरि चपेटे देत नित, केस गहे कर नीचु ।। ६२ ।।

तुलसी अपनो आचरन, भलो न लागत कासु।
तेहि न बसात जो खात नित, लहसुन हू की बास ।। ६३ ।।

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियै न पान।
रहिमन परहित हेत ही, सम्पति सुचहिं सुजान ।। ६४ ।।

तुलसी जौं पै राम सों, नाहिन सहज सनेह।
मूँड़ मुड़ायो बादिहीं, भाँड़ भयो तजि गेह ।। ६५ ।।

तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार।
राग न रोष न दोष दुख, दास भए भव पार ।। ६६ ।।

तुलसी तीरहि के बसे, अवशि पाइये थाह।
वेगहि जाइ न पाइये, सर सरिता अवगाह ।। ६७ ।।

तुलसी तोरत तीर तरु, वक हित हंस विडारि।
विगत नलिन अलि मलिन जल, सुरसरिहू बढ़ियार ।। ६८ ।।

—: थ :—

थकी शक्ति पौरुष घटा, निर्बल हुआ शरीर।
जागा प्रेम न राम को, सो रहीम वेपीर ॥ १ ॥
थाह नहीं भगवान की, सृष्टि अखंड अनन्त।
पा जाते हैं पार पर, निमल हृदय सुसन्त ॥ २ ॥
थर थर तन काँपन लगो, सूखि गयो सब चाम।
तो भी पल भर प्रेम से, लिया न हरि का नाम ॥ ३ ॥
थाम लिया जिसने नहीं, दुखियारे का हाथ।
रहिमन ऐसे मनुज का, नहीं कीजिये साथ ॥ ४ ॥
थक जाता जो काम से, रुक जाता अध-बीच।
असफलता उस पुरुष को, ले जाती है खींच ॥ ५ ॥
थल निश्चल रवि एक-क्रम, एक रूप आकाश।
तिमि निज धर्म न छोड़िये, तज श्रद्धा विश्वास ॥ ६ ॥
थाल परोसैं प्रेम बिन, बिना भाव कछू देय।
रहिमन संत सुसज्जन, तिनहिं बतावहिं हेय ॥ ७ ॥
थाती रखिये धर्म की, कोटिन कष्ट उठाय।
जो अधर्म पर पग धरै, सोई दनुज कहाय ॥ ८ ॥
थिर चर कीट पतंग में, दया न दूजी और।
वही एक व्यापक सकल, ज्यों मनिका में डोर ॥ ९ ॥
थोरेई गुन रीझिवो, बिसराई वह बानि।
तुम हू कान्ह मनहुँ भये, आज कालि के दानि ॥ १० ॥

—: द :—

दीननु देखि घिनात जे, नहिं दीननु सौं काम।
कहा जानि ते लेत हैं, दीनबन्धु कौ नाम ॥ १ ॥

देखत है जग जात है, तऊ ममता सों मेल।
जानत हू मानत नहीं, देखत भूलौ खेल ॥ २ ॥
देव सेव फल देत हैं, जाके जैसे भाय।
जैसे मुख कर आरसी, देखौ सोइ दिखाय ॥ ३ ॥
दीन गँवाया दुनी सों, दुनी न चाली साथ।
पांव कुल्हाड़ा मारिया, गाफिल अपने हाथ ॥ ४ ॥
दुनियां के धोखे मुआ, चलै न कुलकी कान।
तब किसका कुल लाजि है, जब लौ धरा मसान ॥ ५ ॥
देखत परि परिताप कहु, कीन्हौं अश्रु निपात।
अत्याचार अनीति बहु, देखि जरे कहुँ गात ॥ ६ ॥
दूर कहा नियरे कहा, होनहार सो होय।
नरियल की जड़ सींचिये, फूल में प्रकटै तोय ॥ ७ ॥
दया धर्म हिरदै बसै, बोलै अमृत बैन।
तेई ऊँचे जानिए, जिनके नीचे नैन ॥ ८ ॥
दीप शिखा जलती हुई, विमल सिखाती ज्ञान।
तब तक नर जलता नहीं, जगत न करता मान ॥ ९ ॥
दीन सबन कों लखत है, दीनहिं लखै न न कोय।
जो रहीम दीनहि लखै, दीनबन्धु सम होय ॥ १० ॥
देत न प्रभु कछु बिन दिये, दियै देत यह बात।
लै तंदुल धन विप्र को, तृप्त कियौ यदु नाथ ॥ ११ ॥
दुनिया मन्दिर देहरी, शीस नवावन जाय।
हिरदे भीतर हरि बसें, ताही सों लौ लाइ ॥ १२ ॥
देखा देखी करत सब, नाहिन तत्व विचार।
यह निश्चय ही जानिये, भेड़ चाल संसार ॥ १३ ॥
दोऊ चाहें मिलन कों, तो मिलाप निरधार।
कबहूँ नाहिन बाजि है, एक हाथ सों तारि ॥ १४ ॥

दोष भरी न उचारिए, जदपि यथारथ बात।
कहैं अंध को आंधरो, मान बुरो सतरात॥ १५॥
देस, काल, करता, करम, बुधि विद्या गति हीन।
ते सुर तरु तर दारिदी, सुरसरि तीर मलीन॥ १६॥
दुख पाये बिन हूँ कहूँ, गुन पावत है कोइ।
सहें वेध वन्धन सुमन, तब गुन संयुत होइ॥ १७॥
देखि दीन दुर्बलन कूं, दहत न जाके अंग।
ता कुचालि को भूलि हू, कबहु न कीजै संग॥ १८॥
दुर्जन के संसर्ग तें, सज्जन लहत कलेस।
ज्यों दसमुख अपराध तें, बन्धन लह्यो जलेस॥ १९॥
दोषहि को उमहै गहै, गुन न गहै खल लोक।
पियै रुधिर पय ना पियै, लगो पयोधर जोंक॥ २०॥
दुष्ट संग बसिये नहीं, बसि न कीजिये बात।
कदली बेर प्रसंग तें, छिदै कंटकन पात॥ २१॥
दुरजन दरपन सम सदा. करि देखौ हिय दौर।
सनमुख की गति और है, पीछे की गति और॥ २२॥
दुष्ट रहे जा ठौर पै, ताको करै बिगार।
आगि जहाँ ही राखिये, जारि करै तेहि छार॥ २३॥
देखत को सुन्दर लगै, उर में कपट विषाद।
इन्द्रायन के फलन सम, भीतर कटुक सवाद॥ २४॥
दादुर मोर किसान मन, लग्यो रहै घन माँहि।
पै चातक की रटनि तर, सरवर है कोउ नाँहि॥ २५॥
दुर दिन परे रहीम कहि, दुरथल जइहै भागि।
ठाड़े हूजिय घूर पर, जब घर लागत आगि॥ २६॥
दान दीन को दीजिये, मिटै दरिद की पीर।
औषधि ताको दीजिये, जाके रोग शरीर॥ २७॥

दैवो अवसर को भलौ, जसों सुधरै काम।
खेती सूखे बरसिवो, धन को कौने काम ॥ २८ ॥
दोष लगावत गुनिन कों, जाकौ हृदय मलीन।
धरमी को दंभी कहैं, छमियन को बलहीन ॥ २९ ।
एक एक कौ शत्रु है, जो जाते बलवन्त।
जलहि अनल, अनलहि पवन, सरप जु पवन भखंत ॥ ३० ।
दंभ दिखावत धर्म को, यह अधीन मति अंध।
पराधीन अरु धर्म को, कहौ कहा संबंध ॥ ३१ ॥
दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये, जब लग घट में प्रान ॥ ३२ ॥
दौलत की दो लात हैं, तुलसी निश्चय कीन।
आवत अन्धा करत है, जावत करत अधीन ॥ ३३ ॥
दोष पराया देख कर, चले हसंत हसंत।
अपना याद न आवही, जाका आदि न अन्त ॥ ३४ ॥
दाढ़ी मूंछ मुँड़ाय कर होगया घोटम घोट।
मन को क्यों नहिं मूँड़िये, जामें भरी है खोट ॥ ३५ ॥
देह भाव छोड़े बिना, आत्म भाव नहिं होय।
बिनु तनु नासे बीज जिमि, तरु न डहडहो होय ॥ ३६ ॥
देह गेह परिवार मैं, करि सीमित निज प्रेम।
पावत प्रतिफल में सदा, सीमित अपनो क्षेम ॥ ३७ ॥
दु:ख मे सुमिरन करैं सब. सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे, दुख काहे को होय ॥ ३८ ॥
दान दिये धन ना घटे, नदी न घाटे नीर।
अपनी आँखों देख लो, यों कहै दास कबीर ॥ ३९ ॥
दस द्वारे का पींजरा, तामें पंछी मौन।
रहे को अचरज होत है, गये अचभा कौन ॥ ४० ॥

दुर्बल को न सताइये, जाकी मोटी हाय ।
बिना जीव की सास से, लोह भस्म हो जाय ॥ ४१ ॥
दीन दुखी असहाय का, करो सदा उपकार ।
जानौ वेद पुराण का, यही एक है सार ॥ ४२ ॥
दुख तजि सुख की चाह नहिं, नहि वैकुंठ विवान ।
चरन कमल चित चहत हौं, मोहि तुम्हारी आन ॥ ४३ ॥
दाग जो लागा नील का, सौ मन साबुन धोय ।
कोटि यतन कर देखिए, कागा हंस न होय ॥ ४४ ॥
दीपक और कपूत की, गति एकै करि जोय ।
बारे उजियारो लगै, बढ़े अँधेरो होय ॥ ४५ ॥

—: ध :—

धन रहीम जल पङ्क का, लघु जिय पियत अघाय ।
उदधि बड़ाई कौन जो, जगत पियासो जाय ॥ १ ॥
धीरज धर कारज करे, आरत बनें न नेक ।
यही मार्ग है धर्म का, कटते कष्ट अनेक ॥ २ ॥
धन थोरो इज्जत बड़ी, कह रहीम क्या बात ।
जैसे कुलकी कुलबधू, चिथड़न मांह समात ॥ ३ ॥
धन अरु यौवन को गरब, कबहूँ करिये नांह ।
देख ही मिटि जात हैं, ज्यों बादर की छांह ॥ ४ ॥
धन संच्यौ किहि काम कौ, खाउ खरच, हरि प्रीति ।
बंध्यौ गंधोलौ कूप जल, कढै बढै इहि रीति ॥ ५ ॥
धन बल जन बल बाहु बल, कहिं काहू के घाट ।
एकहि एका बल बिना, सब बल बारा बाट ॥ ६ ॥
धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय ।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय ॥ ७ ॥

—: न :—

नारायण के सुत नरहिं, लघु करि गनियन कोय।
अवसर लहि बट बीज ज्यों, दृढ़ तर तरुवर होय ॥ १ ॥
नीरज रहता नीर में, नहीं भागते पात।
सज्जन जन जग बीच ज्यों, रहते दिन अरु रात ॥ २ ॥
नीति अनीति बड़े सहें, रिस भरि देत न गारि।
भृगु उर दीनी लात पै, कीनी हरि मनुहारि ॥ ३ ॥
न्हाये धोये क्या भया, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोये बास न जाय ॥
नीचहु उत्तम संग मिलि, उत्तम ही ह्वै जाय।
गंग संग जल निन्द्यहू, गंगोदक कहलाय ॥ ५
निबल, निरुद्यम, निर्धनी, नास्तिक, निपट निरास।
जड़, कायर, करि देत है, नरहिं अंध विश्वास ॥
निशदिन करतब कर्म करु, जग में कर्म प्रधान।
तुलसी ना लखि पाइयो, किये अमित अनुमान ॥ ७
निज कृत दुष्कृति कृतिका, फल पाते सब लोग।
जैसा जिसका कर्म है, वैसा ही फल भोग ॥ ८
नर की अरु नल नीर की; गति एकै करि जोय।
जेतो नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊँचो होय ॥ ९
नहिं चाहों साम्राज्य सुख, नहिं स्वर्ग निर्वान।
जन्म जन्म निज धर्म पै, हरषि चढ़ावौ प्रान ॥ १०
नीच निचाई नहिं तजइ, जो पावै सतसंग।
तुलसी चंदन विटप बसि, विष नहिं तजत भुजंग ॥ ११
नीच चंग सम जानिये, सुनि लखि तुलसीदास।
ढील देत भुँइ गिर परत, खेंचत चढ़त अकास ॥ १२

निवहैं सोई कीजिये, पन अपने उनमान ।
कैसे होत गरीब पै, राजा जैसो दान ॥ १३ ॥
न करि नाम रंग देखि सम, गुन बिन समझे बान ।
गान घात गौ दूध ते, सेंहुड़ केतें घात ॥ १४ ॥
नृप, गुरु, तिय, जल, अग्नि को, मध्य सेइये जाय ।
है निवास अति निकट तें, दूर रहे फल नाय ॥ १५ ॥
नृपति चोर जल अनल सब, धनिकनहीं दुख देत ।
जल थल नभ में मांस को, भख केहरि खग लेत ॥ १६ ॥
नैना देत बताय सब, हिय को हेत अहेत ।
जैसे निरमल आरसी, भली बुरी कहि देत ॥ १७ ॥
निबल सबल के संग ते, सबलन सों अनखात ।
देति हिमायत को गधी, ऐरावत को लात ॥ १८ ॥
नहिं उपजये वे मुखन, नहिं जाये वे पांय ।
एकहि मग आये सबहि, एकहि मारग जांय ॥ १९ ॥
निर्बल मिलकर परस्पर, वस्त्र बनाता सूत ।
मिलो परस्पर दौड़कर, हर्षित भारत पूत ॥ २० ॥
नीच निरादर ही सुखद, आदर सुखद विसाल ।
कदरी बदरी चिटर गति, पेखहु पनस रसाल ॥ २१ ॥
निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय ।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करत सुभाय ॥ २२ ॥
नारायण सतसंग कर, सीख भजन की रीत ।
काम क्रोध मद लोभ में, गई आरबल बीत ॥ २३ ॥
नारायण जब अन्त में, यम पकरेंगे बाँहि ।
तिनसों भो कहियो हमें, अभो सोफतो नाँहि ॥ २४ ॥
नारायण में सच कहूँ, भुज उठाय के आज ।
जो जिय बने गरीब तू, मिलें गरीब निवाज ॥ २५ ॥

नारायण या जगत में, यह दो वस्तु सार।
सब सों मीठौ बोलिबौ, करबों पर उपकार ॥ २६

नारायण दो बात को, दीजे सदा बिसार।
करी बुराई और ने, आप कियौ उपकार ॥ २७

नारायण हरि भगत की, प्रथम यही पहिचान।
आप अमानी हो रहे, देत और को मान ॥ २८ ॥

नर-तीछन विष-पान ते, मरत एक ही बार।
विषय-पान-रत सो मरत, जग में बार हजार ॥ २९ ॥

निन्दा चन्दा कामिनी, काँचन को संजोग।
इनसे बचै विचारि करि, तौ साधै तू जोग ॥ ३० ॥

नेह डगर में पग धरै, फेर बिचारै लाज।
नारायण नेहीं नहीं, बातन क महाराज ॥ ३१ ॥

निन्दक से कुत्ता भला, जो हठ कर माँडे रार।
कुत्ता से क्रोधी बुरा, गुरुहि दिवावे गार ॥ ३२ ॥

नीच हिये हुलसे रहत, लहै गेंद के पोत।
ज्यों-ज्यों माथे मारियत, त्यों-त्यों ऊँचे होत ॥ ३३ ॥

नारायण निज हिये में, अपने दोष विचार।
ता पीछे तू और के, औगुण भले निहार ॥ ३४ ॥

नारि पराई आपनी, भोगें नरकैं जाय।
आग आग सब एक सी, हाथ दिये जल जाय ॥ ३५ ॥

नारी नदी अथाह जल, बूड़, मुआ संसार।
ऐसा साधू कब मिलै, जा संग उतरूँ पार ॥ ३

निन्दा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रान प्रिय, गुन मन्दिर सुखपुंज ॥ ३

निज दूषन गुन राम के, समुझे तुलसीदास।
होय भलो कलि काल हूँ, उभय लोग अनयास ॥ ३

नहिं रूप कछु रूप है, विद्या रूप निधान।
अधिक पूजियत रूप तें, बिना रूप विद्वान॥ ३९॥
नाद रीझि तन देत मृग, नर वर गन धन देत।
वे रहिमन पसु ते अधिक, रीझे कछू न देत॥ ४०॥

—: प :—

पचन पंच मिलाइ कैं, जीव ब्रह्म में लीन।
जीवन मुक्त कहावही, रस-निधि वह परवीन॥ १॥
पढ पढ कै ज्ञानी भये, मिट्यौ नहीं तन ताप।
राम नाम तोता रटैं, कटे न बन्धन पाप॥ २॥
प्रेम व्यथा मन में बसै, सव तन जर्जर होय।
राम वियोगी ना जियै, जीयै तौ बौरा होय॥ ३॥
प्रेम पियाला जो पियै, सीस दच्छिना देय।
लोभी सीस न दे सकै, नाम प्रेम का लेय॥ ४॥
प्रेम-प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्हा कोय।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोय॥ ५॥
पिंजर प्रेम प्रकाशिया, जागा जोग अनन्त।
संसय छूटा सुख भया, मिला पियारा कन्त॥ ६॥
पिंजर प्रेम प्रकाशिया, अन्तर भया उजास।
मुख कस्तूरी महक सी, बाणी फूटी बास॥ ७॥
पानी केरा बुदबुदा, यही हमारी जाति।
एक दिना छिप जायँगे, ज्यों तारे परभात॥ ८॥
प्यास रहत पी सकत नहिं, औघट घाटनि पान।
गज की गरुवाई परी, गज की ही गर आन॥ ९॥
पशु पक्षी हू जानही, अपनी अपनी पीर।
तब सुजान जानों तुम्हें, जब जानो पर पीर॥ १०॥

पर कारज साधहिं सदा, तजि सुख स्वार्थ अनन्त।
पदम पत्र जिमि जग जियें, धनि धनि सन्त महन्त ॥ ११

पर नारी के नेह में, फँसते जान अजान।
जान बूझ कर वे मनों, करते हैं विषपान ॥ १२
पर तिय माता सम गिनै, परधन धूरि समान।
अपने सम सब को गनै, यही ज्ञान विज्ञान ॥ १३ ।
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय ॥ १४ ।
पंडित पंडित सौं मिलैं, संसय मिटत न बेर।
मिलै दीप दुहु दुहुन कों; होत अंधेर निवेर ॥ १५ ॥
पढ़ी न आयी काम पै, चित्र ग्रीव की उक्ति।
अपनी अपनी क्यों करौ, सबतें सब की युक्ति ॥ १६ ॥
पीछे कारज कीजिए, पहले पहुँच विचार।
कैसे पावत उच्च फल, वावन बाँह पसार ॥ १७ ॥
प्रथम ज्ञान समुझै हिये, विधि निषेध व्यवहार।
उचितानुचितहिं हेरि कै, करतव करिय सँभार ॥ १८ ॥
प्यारी अनप्यारी लगे, समे पाय सब बात।
धूप सुहावे शीत में, सो ग्रीषम न सुहात ॥ १९ ॥
प्रेम निवाहन कठिन है, समुझि कीजिये कोय।
भांग भखन है सुगम पै, लहर कठिन ही होय ॥ २० ॥
प्रकृति मिले मन मिलत है, अनमिल ते न मिलाय।
दूध दही तें जमत है, कांजी तें फटजाय ॥ २१ ॥
प्रेम लगन जासों भई, सुख दुख ताके संग।
बसत कमल अलि बास बसि, सो पुनि भखत मतंग ॥ २२ ॥
प्रेमी प्रीति न छांड़ि ही, होत न प्रन ते हीन।
मरे परे हू उदर में, जल चाहत है मीन ॥ २३ ॥

प्रीति टूटे हू सुजन के, मन तें हेत छुटै न।
कमल नाल कों तारिये, तदपि सूत टूटै न ॥ २४ ॥
प्रेम वैर अरु पुण्य अघ, जस अपजस जय हान।
वात वीज इन सबन का, तुलसी कहहि सुजान ॥ २५ ॥
प्रापति सो तैसी करै, जाको यथा स्वभाय।
भाजन मित भरि सरित ते, जल भरि भरि लै जाय ॥ २६ ॥
पंकज उपजै पंक में, सौरभ अति सुखकार।
होत महत्व न जन्म को, गुण कारण सु विचार ॥ २७ ॥
परी विपत तें छूटिये, करिये जोर उपाव।
कैसे निकसै बिनु जतन, परी भौंर में नाव ॥ २८ ॥
प्रकृति वीर को अन्त हू, परत मन्द नहिं तेज।
नहिं चाहत चन्दन चिता, छांड़ि भीष्म शर सेज ॥ २९ ॥
पराधीन सब इन्द्रियन, बल वीरज ते हीन।
या कानन में केहरी, इक तू ही स्वाधीन ॥ ३० ॥
प्रेमी अवगुन ना गिनै, यही जगत की चाल।
देखौ सब ही श्याम कों, कहत बाल सब लाल ॥ ३१ ॥
पिसुन छल्यो नर सुजन को, करत विसास न चूंक।
जैसे दाह्यो दूध को, पीवत छाछहि फूंक ॥ ३२ ॥
पर भाषा पर भाव पर, भूषन पर परिधान।
पराधीन जन की अहै, यही पूर्ण पहिचान ॥ ३३ ॥
प्रातः के बिछुड़े अहा, साँझहु आवै भौन।
नीतिवान, इहा सुधी, इम सब जग में कौन ॥ ३४ ॥
पर धन पत्थर मानिए, पर स्त्री मात समान।
इतने से हरि ना मिलें, तो तुलसी दास जमान ॥ ३५ ॥
पुन्य प्रीति पति प्रापतिउ, परमारथ पथ पाँच।
लहहिं सुजन परिहरहिं खल, सुनहु सिखावन साँच ॥ ३६ ॥

पक्षी पिये न जल घटे, घटें न सरवर नीर ।
दान किये धन ना घटे, जो सहाय रघुवीर ॥ ३७ ॥
पर निन्दा पर द्रोह में, दिया जनम सब खोय ।
कृष्ण नाम सुमरा नहीं, तिरना किस विधि होय ॥ ३८ ॥
'पावरहाउस' ब्रह्म-सम, सब कहँ देत प्रकाश ।
भिन्न बल्ब-अन्तः करन, घटि वढ़ि देहि उजास ॥ ३९ ॥
परमारथ-पथ की प्रथम, विषय, त्याग सोपान ।
तापर पग-बिनु जात कत, पथिक महा अनजान ॥ ४० ॥
पुण्य सोइ-जाम निहित, सुख सब ही को होय ।
दुख सब को जामैं मिले, पाप कहावैं सोय ॥ ४१ ॥
पय-सम सब शुभ काज है, विष-वत् काम न जाहि ।
दूध खरोपर विष परो, पंडित पियत न ताहि ॥ ४२ ॥
पर औगुन दुर्जन लखै, गुन 'ऋषि' ध्यान न जाय ।
कनक-भवन सुन्दर प्रविस, चींटिय छेद लखाय ॥ ४३ ॥
पर औगुन देखँ नहीं, कुफल देहि तत्काल ।
जिमि दुखती अँखियाँ निरखि, होंहि आपनी लाल ॥ ४४ ॥
परमारथ बिगरो नहीं, है बिगरो व्योहार ।
जो साधे व्योहार को, छिन मँह होय सुधार ॥ ४५ ॥
प्रेम प्रेम सब कोई कहै, प्रीति न जाने कोय ।
आठ पहर बहता रहे, प्रेम कहावे सोय ॥ ४६ ॥
पतिवरता मैली भली, काली कुचल कुरूप ।
पतिवरता के रूप पर, वारूँ कोट सरूप ॥ ४७ ॥
पानी का है बुलबुला, इस मानस की जात ।
देखत ही छुप जायगें, ज्यों तारा प्रभात ॥ ४८ ॥
पूरा सतगुरु ना मिला, सुनी अधूरी सीख ।
स्वाँग यती का पहिर कर, घर घर माँगे भीख ॥ ४९ ॥

प्रेम विना धीरज नहीं, विरह विना वैराग ।
सतगुरु विना जावै नहीं, मन मनसा का दाग ॥ ५० ॥
प्रेम पाँवरी पहिरि के, धीरज कज्जल देय ।
शील सिन्दूर सेराक के, तव पिय का सुख लेय ॥ ५१ ॥
प्रिय भाषण पुनि नम्रता, आदर प्रीति विचार ।
लज्जा क्षमा अयाचना, ये भूषण उरधार ॥ ५२ ॥
प्रिय भाषी शीतल हृदय, संयम सरल उदार ।
जो जन ऐसो जगत में, तासों सबको प्यार ॥ ५३ ॥
पर हित प्रीति उदार चित, विगत दंभ मद रोष ।
नारायण दुख में लखै, निज कर्मन को दोष ॥ ५४ ॥
पानी वाढ़ौ नाव में, घर में वाढ़ौ दाम ।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानों काम ॥ ५५ ॥
प्रभुता को सब मरत हैं, प्रभु को मरै न कोय ।
जो कोई प्रभु को मरै, तो प्रभुता चेरी होय ॥ ५६ ॥
परनारी के राचने, सीधा नरकै जाय ।
तिनको यम छाँड़ै नहीं, कोटिन करै उपाय ॥ ५७ ॥
पाव पलक की सुध नहीं, करै काल्ह का साज ।
काल अचानक मारसी, ज्यों तीतर को वाज ॥ ५८ ॥
परद्रोही परदार रत, पर धन पर अपवाद ।
ते नर पामर पापमय, देह धरे मनुजाद ॥ ५९ ॥
परमारथ पहिचानि मति, लसति विषयँ लपटानि ।
निकस चिता तें अध जरति, मानहुँ सतो परानि ॥ ६० ॥
पेट न फूलत बिनु कहे, कहत न लागइ देर ।
सूमति बिचारे बोलिए, समुझि कुफेर सुफेर ॥ ६१ ॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय ।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय ॥ ६२ ॥

पावक वैरी रोग रिन, सेसहु रखिये नाहिं।
ए थोरे हू बढ़हिं पुन, महा जतन सो जाहिं ॥ ६३

परहुँ नरक, फल चारि सिसु, मीचु-डाँकनी खाउ।
तुलसी राम सनेह को, जो फल सो जरि जाउ ॥ ६४

पीवै नीर न सरवरौ, बूँद स्वाँति की आस।
केहरि तृन नहिं चरि सकै, जो व्रत करै पचास ॥ ६५

प्रीति राम सों नीति पथ, चलिय राग रिस जीति।
तुलसी संतन के मते, इहै भगति की रीति ॥ ६६

पर सुख संपति देखि सुनि, जरहिं जे जड़ बिनु आगि।
तुलसी तिन के भागते, चलै भलाई भागि ॥ ६७

—: फ :—

फल विचार कारज करौ, करहु न व्यर्थ अमेल।
ज्यों तिल बारू पेरिए, नाहिन निकसै तेल ॥ १

फिर पीछे पछताइए, जो न करै मति सूध।
वदन जीभ हिय जरत है, पीवत तातौ दूध ॥ २

फेर न ह्वै है कपट सौ, जो कीजे व्यापार।
जैसे हांड़ी काठ की, चढ़ै न दूजी वार ॥ ३

फिरत वृथा चिमटा धरै, अंग कुढंग वनाय।
तिन तें तौ शूकर भलो, थल शोधहि मल खाय ॥ ४

फूँकत जे गाँजो अभखु, भखि भभूतिया भूत।
लोलुप लंपट धत ते, बने फिरत अवधूत ॥ ५

फूटी आँख विवेक की, लखे न सन्त असन्त।
जाके संग दस बीस हैं, ताको नाम महन्त ॥ ६

फल कारन सेवा करें, तजें न मन से काम।
कहें कबीर सेवक नहीं, चहे चौगुना दाम ॥ ७

—: ब :—

ब्रह्म फटिक मनि सम लसै, घट घट मांझ सुजान।
निकट आय बरतै जो रङ्ग, सो रङ्ग लगै दिखान ॥ १ ॥
वहुत दिवस भटकत रह्या, मन में विषै विलास।
ढूँढत-ढूँढत जग फिरा, तृन के ओटै राम ॥ २ ॥
वासर सुख ना रैन सुख, ना सुख सुपने मांह।
कबीर बिछुटा राम से, ना सुख धूप न छांह ॥ ३ ॥
बिन रखवारे वाहिरा, चिड़ियों खाया खेत।
आधा परधा ऊबरे, चेत सकै तो चेत ॥ ४ ॥
वेटा जाया तौ का भया, कहा बजावै थाल।
आना-जाना ह्वै रहा, ज्यों कीड़ी का नाल ॥ ५ ॥
वड़े भलाई के जतन, तजैं लोक की लाज।
बने चतुर्भुज चोर हू, नृप कन्या के काज ॥ ६ ॥
बुरी करें पर जे बड़े, भली करें हित धारि।
जैसे दधि बांध्यो तऊ, कपि दल दियो उतारि ॥ ७ ॥
वड़े वचन पलटैं नहीं, कहि निरबाहैं धीर।
कियो विभीषन लङ्क पति, पाय विजय रघुवीर ॥ ८ ॥
बड़ै भार लै निरवहै, तजत न खेद विचारि।
शेष धरा धरि धर धरै, अबलों देत न डारि ॥ ९ ॥
बिन बूझे ही जानिए, बुध मूरख मन मांहिं।
छलकें ओछे नीर घट, पूरे छलकत नाहिं ॥ १० ॥
बिना कहे हू सत पुरुष, पर की पूरै आस।
कौन कहत है सूर्य कौं, घर-घर करत प्रकाश ॥ ११ ॥
बड़े-बड़े सों रिस करें, छोटे सों न रिसाय।
तरु कठोर तोरे पवन, कोमल तृन बचि जाय ॥ १२ ॥

बडे बड़ाई ना करें, बड़ो न बोलें बोल ।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख हमारा मोल ॥ १३ ॥
बिना दिये न मिले कछू, यह समझौ सब कोय ।
होत सिसिर में पात तरु, सुरभि सपल्लव होय ॥ १४ ॥
वचन रचन का पुरुष के, कहे न छिन ठहराय ।
ज्योंकर पद मुख कच्छप के, निकसि निकसि दुरिजाय ॥ १५ ॥
बुध जन शील न त्यागिए धनी मूर्ख अवरेख ।
कुलजा सील न परिहरै, वेश्या भूषित देख ॥ १६ ।
बड़े गुनी लघुता गहें, तेहि सनमानत धीर ।
मंद तऊ प्यारौ लगै, सीतल सुरभि समीर ॥ १७ ।
बसि कुसंग चाहत कुशल, यह रहीम जिय सोस ।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस ॥ १८ ।
ब्रह्मचर्य आश्रम सुखद, श्रम सहि करो सप्रीति ।
बढ़ें बाल और बालिका, यही सनातन रीति ॥ १६ ।
बिना ग्यान कौ करम कहुँ, तारि सकै संसार ।
कहा काटि करिहौ जु कर, धार बिना तरवार ॥ २०
बर माला बाला सुमति, उर धारै जुत नेह ।
सुख शोभा सरसाय नित, लहै राम पद गेह ॥ २१
बिनसत बार न लागई, ओछे जन की प्रीत ।
अम्बर डम्बर सांझ के, ज्यों बारू की भीति ॥ २२
बढ़त आपनौ गोत सों, औंर सबै अनखाइ ।
सुहृद नैन नैना बढ़े, देखत हियौ सिहाइ ॥ २३
बुरा प्रेम को मति कहौ, प्रेम अहै सुलतान ।
जिहि घट प्रेम न संचरै, सो घट सदा मसान ॥ २४
बात कहन की रीति में, है अन्तर अधिकाय ।
एक वचन तैं रिस बढ़ै, एक वचन ते जाय ॥ २५

वातहि वातहि वनि पड़ै, वातहि वात नशाय ।
वातहि आदिहि दीप भो, वातहि अन्त बुझाय ॥ २६ ॥
वातहि ते वनि आवही, वातहि ते वन जात ।
वातहि ते वर नर मिलत, वातहि ते बौरात ॥ २७ ॥
वात विना अतिशय विकल, वातहि ते हनुमान ।
वनत वात वर वात ते, करत वात वर घात ॥ २८ ॥
वहु गुन श्रम तें उच्च पद, तनक दोष तें पात ।
नीठ चढ़ै ऊपर शिला, टारत ही गिरि जात ॥ २९ ॥
वहुत भये केहि काम के, भली वीर जो एक ।
शेष धरें सिर पै धरनि, मेंढ़क भखी अनेक ॥ ३० ॥
विना तेज के पुरुष की, अवसि अवज्ञा होय ।
आग बुझे ज्यों राख कों, आनि छुवै सव कोय ॥ ३१ ॥
वनत क्रोध जित निवल नर, धारि क्षमा अभिराम ।
करत कलंकित क्लीव ज्यों, ब्रह्मचर्य व्रत नाम ॥ ३२ ॥
वेंचि प्रियै प्रिय पूतहू, भयौ डोम गृह दास ।
सत्य सिंध हरिचन्द तू, सहज सू सत्य प्रकाश ॥ ३३ ॥
वैठति इक पग ध्यान धरि, मीनन कों दुख देत ।
वक सुख कारे हो गये, रसनिधि याही हेत ॥ ३४ ॥
वूड़ै पै सीझै नहीं, रहिमन नीर पखान ।
वूझै पै सूझै नहीं, तैसे मूरख मान ॥ ३५ ॥
वड़े कहैं सो कीजिये, करैं सु करिये नाहिं ।
शंभु अशुचि वन वन फिरैं, और विक्षिप्त कहाहिं ॥ ३६ ॥
विन स्वारथ कैसे सहै, कोऊ करुए वैन ।
लात खाय पुचकारिए, होइ दुधारू धैन ॥ ३७ ॥
वहुतन कों न विरोधिये, निवल जानि वलवान ।
मिलि भखि जांय पिपीलका, नागहिं नग के मान ॥ ३८ ॥

बहुत निबल मिलि बल करें, करें जु चाहे सोय।
तिनकन की रसरी करी, गज को बन्धन होय ॥ ३९ ॥
बुरे लगत सिख के वचन, हिये बिचारो आप।
कडुई भेषज बिन पिये, मिटै न तनकी ताप ॥ ४० ॥
बहु गुन गन विज्ञान धन, बहु अध्यात्म बिचार।
करत अकेली दासता, सब को बंटाढार ॥ ४१ ॥
बरसि विश्व हर्षित करत, हरत ताप अघ प्यास।
तुलसी दोष न जलद को, जो जरि मरै जबास ॥ ४२ ॥
बनती देखि बनाइए, परन न दीजे खोट।
जैसी चलै बयार तब, तैसी दीजे ओट ॥ ४३ ॥
बनि महन्त व्यसननि फँस, करत न जग को हेत।
कैसे ऐसे नरहि नर, सनमानत धन देत ॥ ४४ ॥
बड़े गहे ते होत बड़, ज्यों बावन कर दंड।
श्री प्रभु के सत्संग सों, बढ़ गयो अखिल ब्रह्मण्ड ॥ ४५ ॥
बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ विराग बिनु।
गावहिं वेद पुरान सुख, किम हिय हरि भगति बिनु ॥ ४६ ॥
बिन आँखिन कि पानही, पहिचानत लखि पाय।
चारि नयन के नारि नर, सूझत मोच न पाय ॥ ४७ ॥
बांट खाय हरि को भजै, तजै सकल अभिमान।
नारायण ता पुरुष को, उभय लोक कल्यान ॥ ४८ ॥
बोली तो अनमोल है, जो कोई जाने बोल।
हिये तराजू तौल कर, तब मुख बाहर खोल ॥ ४९ ॥
बहुत गई थोरी रही, नारायण अब चेत।
काल चिरैया चुग रही, निशि दिन आयू खेत ॥ ५० ॥
बुद्धि - छुरा हरि भजन सिल, रगरौ बारहि बार।
भोग—पनस जो काटि हौ, कटै न एको बार ॥ ५१ ॥

विटप-शिखर चढ़ि कुसुम जनु, टेरत सीस उठाय ।
हरिहि समर पै जो स्वरँग, ताही रंग सुहाय ॥ ५२ ॥
बुद्धि बढ़ै जासों सुनों, होय मोह-भ्रम भंग ।
स्वाध्याय, हरि भजन रिपि, महा पुरुष को संग ॥ ५३ ॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे लम्ब खजूर ।
पंछी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर ॥ ५४ ॥
बाजीगर का बांदरा, ऐसे जीव मन साथ ।
नाना नाच दिखाय कर, राखे अपने हाथ ॥ ५५ ॥
विरछा फले न आपको, नदी न पीवे नीर ।
पर स्वारथ के कारने, संतन धरा शरीर ॥ ५६ ॥
बानी से पहचानिये, साहू चोर की बात ।
अंदर की करनी सबै, निकले मुंह की बात ॥ ५७ ॥
बहुरि पलट आवत नहीं, छिन छिन बीतत जाहि ।
समय अमित अनमोल है, समझ करो व्यय ताहि ॥ ५८ ॥
ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर, कहहिं न दूसरि बात ।
कौड़ी लागे लोभ बस, करहिं विप्र गुरु घात ॥ ५९ ॥
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय ।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय ॥ ६० ॥
बिनु सतसंग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गएँ बिनु राम पद, होइ न दृढ़ अनुराग ॥ ६१ ॥
वेष बिसद बोलनि मधुर मन कटु करम मलीन ।
तुलसी राम न पाइऐ, भएँ विषय जल मीन ॥ ६२ ॥
बरषा को गोबर भयो, को चह को कर प्रीति ।
तुलसी तू अनुभवहि अब, राम विमुख की रीति ॥ ६३ ॥
बोल न मोटे मारिये, मोटी रोटी मार ।
जीसि सहस सम हारिबो, जीते हारि निहार ॥ ६४ ॥

बड़े पेट के भरन में, है रहीम दुख बाढ़ि।
याते हाथी हहरि के, दिये दाँत द्वै काढ़ि ॥ ६
बैर, प्रेम, अभ्यास, यश, होत-होत ही होय।
रहिमन इनको संग लै, जनमत जगत न कोय ॥ ६
बड़े दीन को दुख सुने, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुती, कहु रहीम पहिचानि ॥ ६
बलिहारी गुरु आपको, घड़ी घड़ी सौ बार।
मानुष से देवत किया करत न लागी बार ॥ ६८
बारि मथें घृत होइ बरु, सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ, यह सिद्धान्त अपेल ॥ ६६
बुध सों विवेकी विमल मति, तिन्ह कें रोष न राग।
सु हृदय सराहत साधु जेहि, तुलसी ताको भाग ॥ ७०
बैर मूल कडुए बचन, प्रेम मूल उपकार।
दोहा सुभ संदोह सो, तुलसी किए विचार ॥ ७१
बहुसुत बहु रुचि बहु बचन, बहु आचार विचार।
इन को भलो मनाइबो, यह अज्ञान अपार ॥ ७२
बकरी पत्ती खात हैं, ताकी काढ़ी खाल।
जे नर बकरी खात हैं, तिन कर कौन हवाल ॥ ७३
बध्यौ बधिक उलट्यौ पर्‌यो, पलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम को, मरतेहुँ लगी न खोंच ॥ ७४
बरसि परुष पाहन पयद, पंख करो टुक टूक।
तुलसी परी न चाहिये, चतुर चातकहि चूक ॥ ७५।

—: भ :—

भाव-भाव की सिद्ध है, भाव भाव में मेल।
जो मानों तो देव है, नहिं मानों तो ढेल ॥ १ ॥

भले बुरे हू सों करत, उपकारी उपकार ।
तरुवर छाया करत है, नीच न ऊँच विचार ॥ २ ॥
भले बुरे छोटे बड़े, रहें बड़ेनि पै आय ।
मकर असुर सुर गिर अनल, दधि मधि सकल बसाय ॥ ३ ॥
भले बुरे निबहें सबी, महत पुरुष के संग ।
चन्द सर्प जल अगिन ए, बसत शंभु के अंग ॥ ४ ॥
भवन बीच रहु विमल वनि, क्यों जावहु वन घोर ।
तजो दुखद, निज कुटिल मति, सुख है चारों ओर ॥ ५ ॥
भलो ज्ञान, अज्ञान नहि, है अज्ञान न ज्ञान ।
भानु उदै तो तम नहीं, है तम उदै न भानु ॥ ६ ॥
भले बुरे सों एक सी, मूढ़नि की परतीत ।
गुंजा सम तोलत कनक, तुला पला की रीति ॥ ७ ॥
भले बुरे सब एक से, जौ लौं बोलत नाहि ।
जान परत है काक पिक, ऋतु वसन्त के माहि ॥ ८ ॥
भले भली ही कहत हैं, पै न कहत हैं दोष ।
सूरदास कहें अंध कों, उपजावत है तोष ॥ ९ ॥
भर्यो रक्त नहि जिन दृगनि, देखि आत्म अपमान ।
क्यों न विधे तिन में विधे, शूल विषम विषबान ॥ १० ॥
भये न जो पढ़ि सत्य व्रत, सबल शूर स्वाधीन ।
तौ विद्या लगि वादि धन, समय शक्ति व्यय कीन ॥ ११ ॥
भेष बनावै सूर को, कायर सूर न होय ।
खाल चढ़ावें सिंह की, स्यार सिंह नहीं होय ॥ १२ ॥
भली करत लागत विलम, विलम न बुरे विचार ।
भवन बनावत दिन लगैं, ढाहत लगत न बार ॥ १३ ॥
भले बुरे जहँ एक से, तहाँ न बसिए जाय ।
ज्यों अँधेर नगरी विकैं, खरि गुर एकै भाय ॥ १४ ॥

भूखे भजन न होत है, नहीं सुहावै राग।
पेट भरे पै लगत है, सब को नीकौ फाग ॥ १५
भले भले विधना रचे, पै सदोष सब कीन।
कामधेनु पसु कठिन मनि, दधि खारो ससि छीन ॥ १६
भलें सुधा सींचौ तहाँ, फलु न लागि है कोय।
जहाँ बाल बिधवान कौ, अश्रु पात नित होय ॥ १७
भलो कहहि बिनु जानेहु, बिन जाने अपवाद।
ते चमगादर जानि जिय, करिय न हरष विषाद ॥ १८
भजन और उपकार करु, एक साथ चित लाय।
नापित धरि धरि धार जिमि, बार बनावत जाय ॥ १९
भीतर से कछु और हैं, ऊपर रँगे सियार।
रे मन ऐसे जनन सों, सदा रहो हुसियार ॥ २०
भीतर सों मैलो हियौ, बाहर रूप अनेक।
नारायण तासों भलौ, कौआ तन मन एक ॥ २१।
भूमि जीव संकुल रहे, गए सरद रितु पाइ।
सदगुरु मिले जाहिं जिमि, संसय भ्रम समुदाइ ॥ २२।
भलो भलाइहि पै लहइ, लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरताँ, गरल सराहिअ मीचु ॥ २३ ॥

—: म :—

ममता मेरा क्या करै, प्रेम उघाड़ी पौर।
दरसन भया दयाल का, सूलि भई सुख सौर ॥ १ ॥
मेरा मुझको कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर ॥ २ ॥
माँगत डोलत है नहीं, तजि घर अनत न जात।
तुलसी चातक भगत को, उपमा देत लजात ॥ ३ ॥

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया काशी जानि।
दसवां द्वारा देहुरा, तहाँ ज्योति पहचानि ॥ ४ ॥
मानुस जन्म अमोल है, दीनों व्यर्थ विताय।
कह किन्हीं जस जाय जग, रे नर कहत न काय ॥ ५ ॥
मान सहित विष पान करि, शम्भु भये जगदीस।
बिना मान अमृत पियौ, राहु कटायौ सीस ॥ ६ ॥
मात पिता गुरु को करत, जे आदर सत्कार।
ते भाजन सुख सुयश के. जीवें वर्ष हजार ॥ ७ ॥
मान होत है गुननि तें, गुन विन मान न होइ।
शुक सारी राखै सबै, काग न राखत कोइ ॥ ८ ॥
मुक्ति सत्य के साथ है, या तन करौ मत कोय।
खेती करो अनाज की, सहज घास भुस होय ॥ ९ ॥
मुल्ला मुनीर क्या चढ़ै, सांई न बहरा होइ।
जा कारन तू बांग दे, दिल के भीतर सोइ ॥ १० ॥
माला पहरे कुछ नहीं, गांठ हृदय की खोइ।
हरि चरनन चित राखिये, तो अमरापुर होइ ॥ ११ ॥
माला फेरत जुग गया, मिटा न मनका फेर।
कर का मनका डारि दै, मन का मनका फेर ॥ १२ ॥
मिलै सुसंगति उच्च हू, करत नीच सो प्यार।
खर का गंग न्हवाइये, तऊ न छांड़ै छार ॥ १३ ॥
मुकता करि करपूर करि, चातक जीवन जोय।
रहमिन ऐसो स्वाँति जल, व्याल बदन विष होय ॥ १४ ॥
मंत्र परम लघु जासु बस, विधि हरि हर सुर सर्व।
महा मत्त गजराज कहँ, बस करि अंकुश खर्व ॥ १५ ॥
मन सों छूटे ना अजों, करत अन्ध विश्वास।
छींक भई काटी गली, बिल्ली देख उदास ॥ १६ ॥

मोह महातम रहतु है, जौ लौं ज्ञान न होत ।
कहा महातम रहि सकै, भये आदित्य उदोत ॥ १७

मीता तू चाहत कियौ, सूखी बतियन जोत ।
नेह बिना ही रोशनी, देखी सुनी न होत ॥ १८

मीता तू या बात को अपने हिये बिचार ।
बजत तमूरा कहुँ सुने, गाँठ गठीले तार ॥ १९

मित्र-मित्र के काम कौं, देति त्रिभव करि हेत ।
जैसे रवि निज तेज को, हरसि चन्द्रमहि देत ॥ २०

मथत मथत माखन रहे, दही मही बिलगाय ।
रहीमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय ॥ २१

मित्र के अवगुन मित्र कहु, पर पहँ भाखत नाहिं ।
कूप छांह जिमि आपनी, राखत आपुहि मांहि ॥ २२

मधुर बचन तें जात मिट, उत्तम जन अभिमान ।
तनिक शीत जल सों मिटे, जैसें दूध उफान ॥ २३ ।

मुनि मन सुथिर कुबात तें, कैसे राखै कोय ।
जल प्रतिबिम्बित बात बस, थिर हू चंचल होय ॥ २४ ।

मूरख को हित के बचन, सुनि उपजत है कोप ।
सांपहि दूध पियाइये, बाढ़े मुख बिष ओप ॥ २५ ॥

मिथ्या भाषी साँच हू, कहै न भावै कोय ।
भांड पुकारै पीर बस, मिस समुझैं सब कोय ॥ २६ ॥

मीठो कोऊ बस्तु नहिं, मीठी जाकी चाह ।
रोगी मिसरी छोड़ि कैं, खात गिलाय सराहि ॥ २७ ॥

मारै इक रक्षा करै, एकहि कुल के दोय ।
ज्यों कृपान अरु कवच ये, एक लोह सों होय ॥ २८ ॥

माला मन से लड़ पड़ी, तू मत बिसरे मोय ।
बिना शस्त्र के सूरमा, लड़त न देखा कोय ॥ २९ ॥

मूरख का मुख बांबिया, निकसत बचन भुजंग।
वाकी औषध मौन है, जहर न व्यापै अंग ॥ ३० ॥
माया माया सब भजे, माधव भजे न कोय।
रे जो तू माधव भजे, माया चेरी होय ॥ ३१ ॥
मन को काहू काम में, अटकावहु बसु-याम।
नहिं खाली अनरथ करै, साधन यहै ललाम ॥ ३२ ॥
मत चिन्ता पर की करौ, अपनो करौ सुधार।
बिनु-प्रयास सुधरै जगत, सब बातन को सार ॥ ३३ ॥
मन माया ते मुक्त ह्वै, बेगि ईस पहँ जाय।
बछरा खूँटा ते छुटे, मात थनहिं लपटाय ॥ ३४ ॥
मनही सुख-दुख-मूल है, सुख दारा नहिं कोय।
याहि सुधारै आप जो, सब सुखदायी होय ॥ ३५ ॥
मानुष जन्म अमोल है, होय न दूजी बार।
पक्का फल जो गिर पड़ा, लगे न दूजी बार ॥ ३६ ॥
माया तो ठगनी वनी, ठगत फिरे सब देश।
जा ठग ने ठगनी ठगी, तो ठग को आदेश ॥ ३७ ॥
माँगन मरन समान है, मत कोई माँगो भीख।
माँगन से मरना भला, यह सद्गुरु की सीख ॥ ३८ ॥
माया छाया एक सी, बिरला जाने कोय।
भगता के पाछे लगे, सन्मुख भागे सोय ॥ ३९ ॥
मानुष जन्म दुर्लभ अति, होत न बारंबार।
तरुवा सों पत्ता झडे, बहुरि न लागे डार ॥ ४० ॥
मर जाऊँ माँगू नहीं, अपने तनु के काज।
परमारथ के कारने, मोहि न आवे लाज ॥ ४१ ॥
मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
पारब्रह्म को पाइये, मन ही की परतीत ॥ ४२ ॥

मान बड़ाई ईरषा, मन में भरी अनेक ।
नारायण साधू बने, देखौ अचरज एक ॥ ४३ ॥
माटी कहै कुम्हार को, तू क्या रूँदै मोहि ।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं रूँदूँगी तोहि ॥ ४४ ॥
मूरख को समझावते, समय गाँठ को जाय ।
कोयला होंय न ऊजरा, सौ मन साबुन खाय ॥ ४५ ॥
माँगे घटै रहीम पद, कितौ करौ बढ़ि काम ।
तीनहिं पग बसुधा करी, तऊ बावने नाम ॥ ४६ ॥
माँगि मधुकरी खाइ जे, ते सोवत गोड़ पसारि ।
पाप प्रतिष्ठा व्यर्थ की, ताते बाढ़ी रारि ॥ ४७ ॥
मुखिया मुखु सो चाहिए, खान पान कहुँ एक ।
पालइ पोषइ सकल अंग, तुलसी सहित विवेक ॥ ४८ ॥
मधुर वचन कटु बोलिबो, बिनु श्रम भाग अभाग ।
कुहू-कुहू कल कण्ठ रव, काँ-काँ कररत काग ॥ ४९ ॥

—: य :—

यों सब जीवन को लखौ, ब्रह्म सनातन आद ।
ज्यों माटी के घटन की, माटी ही बुनियाद ॥ १ ॥
यह तन कच्चा कुंभ है, लिये फिरै है साथ ।
ढक्का लागा फुटि गया, कछू न आया हाथ ॥ २ ॥
यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय ।
वैर प्रीत अभ्यास जस, होत होत ही होय ॥ ३ ॥
यों कहि रहीम यश होत है, उपकारी के संग ।
बांटन बारे को लगे, ज्यों मेंहदी को रंग ॥ ४ ॥
यथा अमल पावन पवन, पाय सुसंग कुसंग ।
महत सुवास कुवास तिमि, जानहु चित्त प्रसंग ॥ ५ ॥

या लच्छन ते जानिये, उर अज्ञान निवास।
अरुचि होय सत्संग में, रुचै हास परिहास ॥ ६ ॥
यह न रहीम सराहिये, देन लेन की प्रीत।
प्रानन बाजो राखिये, हार होय कै जीत ॥ ७ ॥
यथा लाभ संतोष रत, गृह मग बन सम रीति।
ते तुलसी सुखमय सदा, जिन तन विभव विनीत ॥ ८ ॥
यत्न बिना कैसे मिले, कोई वस्तु नवीन।
बिना यत्न पाता नहीं, तिल से तेल प्रवीन ॥ ९ ॥
या जग दुःख को पींजरा, जो न निबाहै धर्म।
स्वर्ग मुक्ति भी ना मिलै, जो न करै सत्कर्म ॥ १० ॥
यहाँ न कोई आपनौ, जौ लौं प्रेम न होय।
बैर किये बिगड़ै बनी, शील नसावै सोय ॥ ११ ॥
या जग जल को बुलबुला, बनै मिटै बहु रंग।
पास पड़ोसी बहुत पै, जाय न कोई संग ॥ १२ ॥
यथा अनल में घृत परे, ज्वाला होत प्रचंड।
तिमि शीतल बानी कहे, दुर्जन करहिं घमंड ॥ १३ ॥
यों निबाह सब जगत को, रस रिस हेत अहेत।
एक एक पै लेत है, एक एक को देत ॥ १४ ॥
या दुनिया में आइके, छाँड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना होइ सो लेइ ले, उठी जात है पैंठ ॥ १५ ॥
यों रहीम गति बड़ेन की, ज्यो तुरंग व्यवहार।
दाव जितावत आपु तन, सही होत असवार ॥ १६
यों रहीम सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अखियाँ निरखि, आँखिन को सुख होत ॥ १७

—: र :—

रहिमन राम न उर धरै, रहै विषय लपटाय।
भुस खावै पशु आप तें, गुड़ गुलियाये खाय ॥ १ ॥
राम रसायन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवन दुलभ है, माँगे शीस कलाल ॥ २ ॥
राम बुलावा भेजिया, कबिरा दीना रोय।
जो सुख प्रेमी सङ्ग में, सो वैकुण्ठ न होय ॥ ३ ॥
रत्ती रत्ती करि बढ़त, मन बढ़ जात अतोल।
घटे भाव के मन यहै, लहै न कौड़ी मोल ॥ ४ ॥
रात गँवाई सोय कर, दिवस गँवायो खाय।
हीरा जन्म अमोल था, कौड़ी बदले जाय ॥ ५ ॥
रूखी सूखी खाय कै, ठंडा पानी पीव।
देख बिरानी चुपड़ी, मत ललचावै जीव ॥ ६ ॥
रहिमन विद्या बुद्धि नहिं, नहिं धरम जस दान।
भू पर जनम वृथा धरै, पसु बिन पूँछ विषान ॥ ७ ॥
राम लखन विजयी भये, बनहुँ गरीब नेवाज।
मुखर बालि रावन गये, घर ही सहित समाज ॥ ८ ॥
रन बन व्याधि विपत्ति में, रहिमन मरै न रोय।
जो रक्षक जननी जठर, सो हरि गये न सोय ॥ ९ ॥
रहिमन वित्त अधर्म को, जरत न लागै बार।
चोरी करि होरी रची, भई तनिक में छार ॥ १० ॥
रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरै, मोती मानुस चून ॥ ११ ॥
रस पोषै बिन हू रसिक, रस उपजावत संत।
बिन बरसै सरसै रहें, जैसे विटप वसन्त ॥ १२ ॥

रुचि बाढ़इ सतसंग नहँ, नीति क्षुधा अधिकाइ।
होत ज्ञान बल पीन अल्प,विजिन विपति मिटि जाइ॥ १३॥
रहे समीप बड़ेन के, होत बड़ो हित मेल।
सब ही जानत बढ़त है, वृक्ष बराबर बेल॥ १४॥
रहिमन उज्ज्वल बरन को, उचित न नीचौ संग।
घुसि काजल की कोठरी, धब्बा लागत अंग॥ १५॥
रहीम नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूधि कलारिन हाथि लखि, मद समुझहि सब ताहि॥ १६॥
रहिमन बनिये सूप से, लीजे जगत पछोर।
हलकन को उड़ि जान दें, गरुए राखि बटोर॥ १७॥
रहिमन नेह लगाइ कें, देखि लेउ किन कोय।
नर को बस करबो कहा, नारायण बस होय॥ १८॥
रहिमन विपदा हू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में जानि परत सब कोय॥ १९॥
रोस मिटै कैसे सहन, रिस उपजावन बात।
ईंधन डारे आगि में, कैसे आगि बुझात॥ २०॥
रूखे वचन मिलाप में, कहन होत रस भङ्ग।
बीन बजत ज्यों तार के, टूटे रहत न रङ्ग॥ २१॥
रहिमन जिह्वा बावरी कहिगै सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर रही, जूतो खात कपाल॥ २२॥
रहिमन कबहु बड़ेन कों, नाहिं गर्व को लेस।
भार धरैं संसार को, तऊ कहावत शेष॥ २३॥
रोसन रसना खोलिए, बरु खोलिय तलवार।
सुनत मधुर परिनाम हित, बोलिय बचन विचार॥ २४॥
रावन रावन को हनेउ, दोष राम को नाहिं।
निज हित अनहित देखु किन, तुलसी आपहि मांहि॥ २५॥

रूप नहीं जग देखता, जो नर ही गुनवान ।
कृष्ण हुए काले तदपि, करता जग सन्मान ॥ २६ ।
रहै मान धन यत्न सों, जहँ बाँकी तरबार ।
सो फल कोउ न लै सके, जहां कटीली डार ॥ २७ ।
रहिमन तजहु अंगार ज्यों, ओछे जन को संग ।
सीरे पै कारौ करै, तातौ जारे अंग ॥ २८ ।
रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलौ ना प्रीति ।
काटे चाटे स्वान के, दोऊ भाँति विपरीत ॥ २९ ।
रहिमन रहला की भली, जो परसै चित लाय ।
परसत मन मैला करै, सो मैदा जरि जाय ॥ ३० ।
रहिमन खोटी आदि की, सो परिनाम लखाय ।
जैसे दीपक तम भखै, कज्जल वमन कराय ॥ ३१ ।
रहिमन चाक कुम्हार को, माँगे दिया न देइ ।
छेद में डंडा डारि कें, चहें नांद लै लेइ ॥ ३२ ।
रहिमन ओछे नरन सों, होत बड़ो नहिं काम ।
मढ़ौं नँगाड़ौ जाय नहिं, सौ चूहे के चाम ॥ ३३ ।
रहिमन बिगरी बात फिर, बनै न खरचे दाम ।
हरि बाढ़े आकास लौं, तऊ बावनै नाम ॥ ३४ ।
रहिमन अति नहिं कीजिये, गहि रहिये निज कानि ।
सहजन अति फूलै तऊ, डार पात की हानि ॥ ३५ ।
रहिमन कठिन चितान तें, चिंता को चित चेत ।
चिता मरे को दहति है, चिन्ता जीव समेत ॥ ३६ ।
रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही रखिये गोय ।
सुन इठलैहे लोग सब, बाँटि न लै हैं कोय ॥ ३७ ।
रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाय ।
बधिक बधै मृग बान सों, रुधिरै देत बताय ॥ ३८ ।

रटत-रटत रसना लटी, तृषा सूखि के अंग।
तुलसी चातक प्रेम को, नित नूतन रुचि रंग॥ ३९॥
रसना साँपिन बदन बिल, जे न जपहि हरिनाम।
तुलसी प्रेम न राम सों, ताहि विधाता वाम॥ ४०॥
'रिषि' निसि-दिन जग में रहौ, फूले कमल समान।
चिन्ता डूबे चित्त में, नहिं प्रकटत भगवान॥ ४१॥
'रिषि' तेरे कल्याण को, यह है सहज उपाय।
महा पुरुष को संग करु, बसि सज्जन समुदाय॥ ४२॥
'रिषि' नर हीरा-काँच की, है ऐती पहिचान।
जगत-निहाई विपति-घन, सहै सो हीरा जान॥ ४३॥
रमा गुनिन कौ छांड़ि कत, भरती मूरख भौन।
गुनी सुपूजित ठौर सब, उनहि पूछतो कौन॥ ४४॥
रखु मन कौ संसार में, नहिं मन में संसार।
तरनी-जल जिमि जगत में, चलै तौ बेड़ा पार॥ ४५॥
'रिषि' आनँद घन-कामना, झपति गगन-उर बीच।
ज्ञान-बात नाशै सकल, दुःख न रहै नगीच॥ ४६॥
'रिषि' श्रद्धा बिश्वास से, साधन बाधा नास।
गरल सुधा सम ह्वै गयो, मीरा के विश्वास॥ ४७॥
'रिषि' असार संसार में, जो चाहे धन-मान।
निसि दिन पुरुषारथ करै, गंगा-नदी समान॥ ४८॥
'रिषि' करि चोर बाजार लहि, धन कत अस इठलात।
कमला थिर काके रही, चार दिनन की बात॥ ४९॥
'रिषि' आशा उत्साह सो, सदा करौ व्योहार।
किन्तु बुरे परिनाम को, रहु हमेश तैयार॥ ५०॥
रोगी दुखी अपाहिजहि, सेवै जो मन लाय।
तिनके आसिरवाद सों, साधन फल मिल जाय॥ ५१।

रामायन—गीता पढ़ी,　　करन लगे उपदेश ।
कोरे ग्रामोफोन 'रिषि', रुचत न हमें निमेष ॥ ५२ ॥
रहत मीन सब एक रस, अति अगाध जल माहिं ।
यथा धर्म सीलन्ह के, दिन सुख संजुत जाहिं ॥ ५३ ॥
रहिमन पर उपकार को, करत न यारी बीच ।
मांस दियो सिव भूप ने,　　दीन्हों हाड़ दधीच ॥ ५४ ॥
रूप भयो, जं वन,　　कुल हू में अनुकूल ।
विन विद्या के जानिये,　　गन्ध हीन ज्यों फूल ॥ ५५ ॥
रहिमन पानी राखिए,　　बिनु पानी सब सून ।
पानी गए न ऊबरे,　　मोती मानुष चून ॥ ५६ ॥
रहिमन प्रीति न कीजिये, जस खीरा ने कीन ।
ऊपर से तो दिल मिला,　　भीतर फाँकें तीन ॥ ५७ ॥
रहिमन सिर को छाँड़ि कैं, करौ गरीवी भेष ।
मीठे वोलो नय चलौ,　　सबौ तुम्हारौ देस ॥ ५८ ॥
रस अनरस समुझै न कछु, पढ़ै प्रेम की गाथ ।
बीछू-मंत्र न जान ही,　　साँप पिटारे हाथ ॥ ५९ ॥
रहैं न जल भरि पूरि, राम सुजस सुनि रावरो ।
तिन आंखिन में धूरि, भरि भरि मूठी मेलिये ॥ ६० ॥
राम काम तरु परि हरत, सेवत कलि तरु ठूँठ ।
स्वारथ परमारथ चहत, सकल मनोरथ झूँठ ॥ ६१ ॥
रहिमन अँसुवा नैन ढरि, जिय दुख प्रगट करेय ।
जाहि निकारो गेह ते, कसि न भेद कहि देय ॥ ६२ ॥
रहिमन प्रीति सराहिये,　　मिले होत रंग दून ।
ज्यों हरदी जरदी तजी,　　तजी सफेदी चून ॥ ६३ ॥
रहिमन धागा प्रेम को,　　मत तोरौ चटकाय ।
टूटे से पुनि ना मिले,　　मिले गाँठि परिजाय ॥ ६४ ॥

रहिमन नीर पखान, भीजै पै सीझै नहीं ।
तैसे मूरख ज्ञान, बूझै पै सूझै नहीं ॥ ६५ ॥
रे मन सब सों निरस ह्वै, सरस राम सों होहि ।
भलो सिखावन देत है, निसि दिन तुलसी तोहि ॥ ६६ ॥
राम कृपा तुलसी सुलभ, गंग सुसंग समान ।
जो जल परै जो जन मिलै, कीजै आपु समान ॥ ६७ ॥
राम लखन बिजई भए, बनहुँ गरीब निवाज ।
मुखर वालि राबन गए, घर ही सहित समाज ॥ ६८ ॥

—: ल :—

लालो मेरे लाल की, जित देखौ तित लाल ।
लाली देखन मैं गई, मैं भी है गई लाल ॥ १ ॥
लेत आत्म अनुभूति रस, शूर सबल स्वाधीन ।
सके न करि काहू समै, आत्म लाभ बल हीन ॥ २ ॥
लखि सतीत्व अपमान हूँ, भये न जे दृग लाल ।
नीबू नौन निचोरिये, छेदि फोरिये हाल ॥ ३ ॥
लालच हू ऐसो भलो, जासों पूरै आस ।
चाटेहू कहु ओस के, मिटै काहु की प्यास ॥ ४ ॥
लालन करता मात सम, पालन पिता समान ।
लाल बनाती देह को, विद्या सब सुख खान ॥ ५ ॥
लखि ईसहि सर्वत्र 'रिषि', धरै कपट परिधान ।
दंभ करै परधन हरै, यह आचरजु महान ॥ ६ ॥
लोभ सरिस अवगुण नहीं, तप नहीं सत्य समान ।
तीर्थ नहीं मन शुद्धि सम, विद्या सम धनवान ॥ ७ ॥
लेने को सत नाम है, देने को अन्न दान ।
तिरने को है दीनता, डूबन को अभिमान ॥ ८ ॥

लहै न फूटी कौड़िहू, को चाहै केहि काज ।
सो तुलसी महँगो कियो, राम गरीब निवाज ॥ ६
लोक रीति फूटी सहै, आंजी सहै न कोय
तुलसी जो आँजी सहै, जग आँधरो न होई ॥ १

—: व :—

विद्या बल, धन रूप यश, कुल सुत वनिता मान।
सभी सुलभ संसार में, दुरलभ आतम ज्ञान ॥ १
वैद मुआ रोगी मुआ, मुआ सकल संसार।
एक कबीरा ना मुआ, जिन का राम आधार ॥ २।
व्याधा बध्यो पपीहरा, परेउ गङ्गा जल जाय।
चोंच मूदि पीवै नहीं, जनि जोवन प्रन जाय ॥ ३ ।
वृक्ष कबहुँ नहिं फल चखें, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने, साधू धरैं सरीर ॥ ४ ॥
विपति बड़े ही सहि सकें, इतर विपति से दूर ।
तारे न्यारे रहत हैं, ग्रसैं राहु शशि सूर ॥ ५ ॥
विद्या बिन न बिराजहीं, जदपि सरूप कुलीन।
ज्यों सोभा पावै नहीं, टेसू बास विहीन ॥ ६ ॥
विद्या विनय विवेक रति, रीति जासु उर होइ।
राम परायन जो सदा, आपद ताहि न होइ ॥ ७ ॥
वैष्णव हुआ तो क्या हुआ, माला मेली चारि।
बाहर कंचन सा रहा, भीतर भरी भंगारि ॥ ८ ॥
विद्या धन आधार है, विद्या बल आधार ।
यह मत जो धारण करे, वह सब गुण आगार ॥ ६ ॥
वेद पुराणहु शास्त्र जत, तत बुधि बल अनुमान।
अनुभव बुद्धि विवेक युत, सो तुलसी परमान ॥ १० ॥

वेद पुरान विवाद में, मति उरझै मतिमान।
सार गहे सब ग्रन्थ को, अपनी बुद्धि प्रमान ॥ ११ ॥
विष हू ते कडुई लगै, रिस में रस की भाख।
जैसे पित्त ज्वरीन को, कड़वी लागत दाख ॥ १२ ॥
वैर मूल कडुए वचन, प्रेम मूल उपकार।
दोहा सरल सनेह मय, तुलसी कह्यो विचार ॥ १३ ॥
वर्तमान आधीन दोऊ, भावी भून विचार।
तुलसी संसय मन न करु, जो है सो निरुआर ॥ १४ ॥
बिना प्रयत्न न होत है, कारज सिद्ध निदान।
चढ़ै धनुष हू ना चलै, विना चलाये बान ॥ १५ ॥
विद्या धन उद्यम विना, कहौ जु पावै कौन।
विना डुलाये ना मिले, ज्यों पङ्खा की पौन ॥ १६ ॥
वीर पराक्रम तें करैं, भुव मंडल में राज।
जोरावर यातें करत, वन अपनौ मृगराज ॥ १७ ॥
विद्या विना प्रयोग के, विसरत इहि उनमान।
बिगर जात विन खबर के, ज्यों ढोली के पान ॥ १८ ॥
विपति परे सुख पाइए, ता ढिग करिए भौन।
नैन सहाई वधिर के, अन्ध सहाई स्रौन ॥ १९ ॥
विना ज्ञान गुन के लखे, मानु न करि मनुहारि।
ठगत फिरत सब जगत को, भेष भक्त कौ धारि ॥ २० ॥
वित्तावान गुनवान है, वित्तहीन गुन हीन।
महिमा वित्त समान कहुँ, काहू की देखीन ॥ २१ ॥
वरु रहीम कानन भलौ, वास करिय फल भोग।
बन्धु मध्य धन हीन ह्वै, वसिबो उचित न जोग ॥ २२ ॥
वीर पराक्रम ना करै, तासों डरत न कोइ।
बालक हू कौ चित्र कौ, बाघ खिलौना होइ ॥ २३ ॥

सहज सील गुन सजन के, खल सों होत न भंग।
रतन दीप की ज्योति ज्यों, बुझत न बात प्रसंग ॥ १७

सब को सुख पहुँचावही, सुहृद जनन को हेत।
दूरहिं सूरज उदित ज्यों, कमलन को सुख देत ॥ १८

सुबुध बीच परि दुहुँन के, करत कलह दुख दूर।
करत देहरी दीप ज्यों, घर आँगन तम दूर ॥ १९

साधु कहावन कठिन है, लंबा पेड़ खजूर।
चढ़ै तो चाखै प्रेम रस, गिरै तो चकना चूर ॥ २०।

समहित सहित समस्त जग, सुहृद जानु सब काहु।
तुलसी यह मति धारु उर, दिन प्रति अति सुख लाहु ॥२१॥

सुधरी बिगरै वेग ही, विगरो फिर सुधरै न।
दूध फटै कांजी परे, सो फिर दूध बनै न ॥ २२ ॥

सहज रसीलौ होय जो, करै अहित पर हेत।
जैसे पीड़ित कीजिये, ऊख तऊ रस देत ॥ २३ ॥

सब तें लघु है मांगिवो, जामें फेर न सार।
बलि पै जांचत ही भये, बावन तन करतार ॥ २४ ॥

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदय साँच है, ताके हिरदय आप ॥ २५ ॥

सांच बिना सुमिरन नहीं, भय बिन भक्ति न होय।
पारस में परदा रहै, कंचन केहि विधि होय ॥ २६ ॥

साँई सो साँचा रहो, साँई साँच सुहाय।
भावै लम्बे केश रख, भावै मूँड़ मुड़ाय ॥ २७ ॥

सत्य वचन मुख जो कहत, ताही चाह सराह।
गाहक आवत दूर ते, सुन इक शब्दी साह ॥ २८ ॥

शेख सबूरी बाहरा, क्या हज काबे जाय।
जाका दिल साबित नहीं, ताको कहाँ खुदाय ॥ २९ ॥

जो गुरु नाम सुजान सम, नहीं विवशता लेस।
ताकी कृपा कटाक्ष तें, रहे न कठिन कलेस ॥ ३० ॥
स्वारथ सो जानहु सदा, जासों विपति नसाय।
तुलसी गुरु उपदेसु बिनु, सो किमि जानों जाय ॥ ३१ ॥
सतसंगति को फल यही, संसय रहइ न लेस।
है असथिर शुचि सरल चित, पावै पुनि न कलेस ॥ ३२ ॥
सीप गयो मुक्ता भयो, कदली भयो कपूर।
अहिफन गयो तो विष भयो, संगति के फल सूर ॥ ३३ ॥
सत संगति में सुख बढ़ौ, जो करि जानै कोय।
आधौ छिन सत संग को, कलिमल डारें खोय ॥ ३४ ॥
सरसुति के भंडार की, बड़ी अपूरब बात।
ज्यौं खरचैं त्यौं-त्यौं बढ़ैं, बिन खरचे घटि जात ॥ ३५ ॥
साँच झूठ निरनय करैं, नीति निपुन जो हाय।
राज हस बिन को करैं, नीर छीर को दोय ॥ ३६ ॥
सुनिये सब की ही कही, करिये सहित विचार।
सर्व लोक राजी रहें, सो कीजे उपचार ॥ ३७ ॥
साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गह रहे, थोथा देइ उड़ाय ॥ ३८ ॥
सज्जन अंगीकृत किये, ताकों लेत नवाहि।
राखि कलंकी कुटिल ससि, तऊ शिव तजत न ताहि ॥ ३९॥
बाँके सीधे को मिलन, निवहै नाहिं निदान।
वान सरल तौऊ तजत, जैसे बक्र कमान ॥ ४० ॥
सब रंग में नीर सम, मिल कै रंग सरसात।
मीत प्रेम रंग से कहौ, क्यों न्यारे ह्वै जात ॥ ४१ ॥
सज्जन सों हित जोरिये, नित नित वढ़े हुलास।
जामें जितनौं गुड़ परे, तामें तितौ मिठास ॥ ४२ ॥

सजन बचावत कष्ट तें, दूरि हौय कै साथ।
नैन सहाई ज्यों पलक, देह सहाई हाथ ॥ ४
सब चाहें मधुरे बचन, को चाहत कटु बात।
दाख सबौ भावौ कहौ, कौन निवौरी खात ॥ ४
सज्जन के प्रिय वचन तें, तन की ताप मिटाय।
जैसे चन्दन नीर ते, तन की तपन बुझाय ॥ ४५
स्वामी होनो सहज है, दुरलभ होनों दास।
गाडर पाली ऊन को, लागी चरन कपास ॥ ४६
सधन, सगुन, सधरम, सगन, सबल ससांइ महीप।
तुलसी जे अभिमान बिन, ते त्रिभुवन के दीप ॥ ४७
सांई मेरे बानियां, सहज करैं व्यौपार।
बिन डंडी बिन पालड़े, तोलै सब संसार ॥ ४८
सबौ कहावौ लसकरी, सब लसकर महँ जाय।
रहिमन सेल जोई सहै, सोई जागीरैं खाय ॥ ४९ ।
श्रम ही तें सब मिलत हैं, बिनु श्रम मिलै न काहि।
सीधी अंगुरी घी जम्यो, क्यों हू निकरै नाहि ॥ ५० ॥
श्रम और बुद्धि प्रभाव तें, लक्ष्मी करत निवास।
ज्यों लों तेल प्रदीप में, तौ लौं ज्योति प्रकास ॥ ५१ ॥
सबल न पुष्ट शरीर सों, सबल तेज युत होय।
हृष्ट पुष्ट गज दुष्ट सों, अंकुश के बस होय ॥ ५२ ॥
सुर तरु लै कीजै कहा, अरु चिन्तामणि ढेरु।
इक दधीचि की अस्थि पै, वारिय कोटि सुमेरु ॥ ५३ ॥
सहज बजावनु गाल त्यों, सहज फुलावन गाल।
काल गाल में रिपु दलै, कठिन गेरिबो हाल ॥ ५४ ॥
शूर न चूकत दांव निज, क्रूर बजावत गाल।
दीनों चक्र चलाय हरि, बकत रह्यो शिशुपाल ॥ ५५ ॥

सीत हरत तम बरत नित, भुवन भरत नहिं चूक।
रहिमन तेहि रवि को कहा, जो घटि लखै उलूक ॥ ५६ ॥
सुन्दर थान न छोड़िये, ज्यों लों होय न और।
पिछलौ पांव उठाइये, देखि धरन को ठौर ॥ ५७ ॥
सुनिये सब की पर वही, करिये जो चित होय।
सोंह दिवाये और के, परे अग्नि नहिं कोय ॥ ५८ ॥
सब को रस में राखिये, अति अति करिये नांहि।
विष निकस्यो अति मथन तें, रतनाकर ही मांहि ॥ ५९ ॥
सो समझे जा बात कौ, सो तिहि कहै विचार।
रोग न जानें ज्योतिषी, वैद्य ग्रहन को चार ॥ ६० ॥
सुख बीते दुःख होत है, दुख बीते सुख होत।
दिवस गये ज्यों निसि उदित, निसिगत दिवस उदोत ॥६१॥
सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आगि कौं, दीपहि देत बुझाय ॥ ६२ ॥
सहि असंख्य दारुन दुखन, बरु लीजै वनवास।
बधु न कीजै बंधु संग, वित्त विहीन निवास ॥ ६३ ॥
सेवक साहिब के बढ़े, बढ़ै वड़ाई ओज।
जेतौ गहरौ जल बढ़े, तेतौ बढ़ै सरोज ॥ ६४ ॥
सो सम्पति केहि काम की, जनि काहू पै होय।
आपु कमावै कष्ट करि, विलसै औरहि कोय ॥ ६५ ॥
संपति संपति जानि कैं, सब को सब कोई देत।
दीन बन्धु बिन दीन की, को रहीम सुधि लेत ॥ ६६ ॥
ससि, सुकेस, साहस, सलिल, मान सनेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढि जात हैं, घटत घटत घटि सीम ॥ ६७ ॥
सब आपद को आपदा, है निर्धनता एक।
इस धन को अर्जित करो, जितौ विपत्ति अनेक ॥ ६८ ॥

शिष्य, सखा सेवक सचिव, सुतिय सिखावत सांच ।
समुझि करिय जनि परिहरिय, लोग हंसाने पांच ॥ ६९
सो ताके अवगुन कहे, जो जेहि चाहै नहिं ।
तपत कलंकी विष भर्यौ, विरहिन शशिहि कहाहि ॥ ७०
सब देखें पर दोष को, अपुन न देखे कोय ।
करै उजेरौ दीप पै, तर अँधेरौ होइ ॥ ७१
सुख दिखाय दुख दीजिये, खल सों लरिये नाहिं ।
जो गुड़ दीने ही मरै, क्यों विष दीजै ताहि ॥ ७२
समय परे ओछे बचन, सबके सहे रहीम ।
सभा दुसासन पट गहे, गदा लिए रहे भीम ॥ ७३ ।
संपति भरम गंवाइ कै, हाथ रहत कछु नांहि ।
ज्यों रहीम ससि रहत है, दिवस अकासहिं मांहि ॥ ७४ ।
सुर तरु हूँ के फरन की, मति कीजौ उत आस ।
जाय बाल विधवा निकसि, जिततें भरति उसास ॥ ७५ ॥
शूद्र बहुत जिस देश में, धरे क्षुद्रता भाव ।
वह विकसाता सहज ही, निज अज्ञान प्रभाव ॥ ७६ ॥
संघ शक्ति कलि में कही, विपति विडारन हार ।
पै क्यों अपनाते नहीं, सघ बद्ध सुविचार ॥ ७७ ॥
सुख दाई सो देत दुख, देखु दिनन को फेर ।
शशि शीतल सयोग पै, तपत विरह की बेर ॥ ७८ ॥

सन्त समागम हरि कथा, तुलसी दुर्लभ दोय ।
सुत दारा अरु लक्ष्मी, पापी गृह भी होय ॥ ७९ ॥
सो जन जगत जहाज है, जा मंह राग न दोष ।
तुलसी तृष्णा त्याग के, गहे शील सन्तोष ॥ ८० ॥
सकल वस्तु संग्रह करे, आवे कोई दिन काम ।
समय पड़े पर ना मिलै, माटी खरचे दाम ॥ ८१ ॥

सरनागत कहँ जे तजहि, निज अनिहित अनुमानि ।
ते नर पामर पाप मय, तिनहिं बिलोकत हानि ॥ ८२ ॥
सभी खिलौना खांड़ में, खांड़ खिलौना नाहिं ।
तसे सब जग ब्रह्म में, ब्रह्म जगत है नाहिं ॥ ८३ ॥
संसारी का कूकरा, नौ नौ आंगल दाँत ।
भजन करै तो ऊबरे, नातड़ फाड़े आंत ॥ ८४ ॥
साँचे शाप न लाग ही, साँचे काल न खाय ।
साँचे को साँचे मिलै, सांचे माहिं समाय ॥ ८५ ॥
संग किसी के ना चले, माया धन अरु माल ।
संग चले हाथों दिया, 'यही जगत की चाल ॥ ८६ ॥
शुद्ध सत्य संकल्प जो, उठते बारम्बार ।
तौ जानौ 'रिषि' ह्वै गयो, यह मन बिना विकार ॥ ८७ ॥
श्रद्धा-सिक्का चलत है, परमारथ की हाट ।
यथा-दाम सौदा करो, पकरौ अपनी बाट ॥ ८८ ॥
साबुन-सम हरि भजन है, जल समान सतसंग ।
केवल साबुन सों कबहुँ, पट न तजै मल संग ॥ ८९ ॥
साधन करै तो अति भलौ, सेवा करै निकाम ।
हरि रीझैं ता भगत पै, देहि आपनों धाम ॥ ९० ॥
सिर फोरौ सागर गिरौ, मरौ चहै विष खाय ।
सदाचार-च्युत जीवनो, हमहि न नेकु सुहाय ॥ ९१ ॥
सो शिक्षा का काम की, जो न हरै नर-पीर ।
भार विभूषन श्रुति कटै, शीत न हरै शरीर ॥ ९२ ॥
साँस साँस में शुभ अशुभ, निकसै अमित विचार ।
उन्नति दूषित जग करें, निकसत करै प्रसार ॥ ९३ ॥
साधू होय न पट रँगे, अरु नहिं जटा रखाय ।
केवल मन जाको रँगो, सोइ साधु कहलाय ॥ ९४ ॥

सुकृत न सुकृती पर हरै, कपट न कपटी नीच।
मरत सिखावन देइ चले, गीधराज मारीच ॥ १२१

साहब ते सेवक बड़ो, जो निज धरम सुजान।
राम बाँधि उतरे उदधि, लाँधि गये हनूमान ॥ १२२

संगत के अनुसार ही, सबकौ बनत सुभाइ।
साँभर मैं जो कछु परै, लवन रूप ह्वै जाइ ॥ १२३

सदा नगारो कूँच को, बाजत आठों जाम।
रहिमन या जग आइ कैं, का कर रहा मुकाम ॥ १२४

श्रीमद् वक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता वधिर न काहि।
मृगनयनी के नयन शर, को अस लाग न जाहि ॥ १२५

सुख में सुमिरन ना किया, दुख में किया याद।
कहें कबीर ता दास की, कौन सुने फरियाद ॥ १२६

सब ते लघुताई भली, लघुता से सब होय।
जस दुतिया का चन्द्रमा, शीश नवे सब कोय ॥ १२७

सूधे मन सूधे बचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल बिधि, रघुबर प्रेम प्रसूति ॥ १२८।

सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।
जागें लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जियँ होइ ॥ १२९।

सारदूल को स्वाँग करि, कूकर की करतूति।
तुलसी ताको क्यों मिले, कीरति बिजय बिभूति ॥ १३०।

सेवक कर पद नयन से, मुख सों स्वामी होइ।
तुलसी प्रीति की रीति सुनि, सुकवि सराहहिं सोइ ॥१३१॥

सुख दुख सब अपने गहे, सब केहु लगत न भाम।
तुलसी राम प्रसाद बिन, सो किमि जानो जाय ॥ १३२ ॥

सेवक पद सुखकर सदा, दुखद सेव्य पद जान।
यथा बिभीषण रावणहिं, तुलसी समुझ प्रमान ॥ १३३ ॥

सघन सगुण सधरम सगण, सजन सुसबल महीप।
तुलसी जे अभिमान बिन ते, त्रिभुवन के दीप॥ १३४॥
समय परे सुपुरुष नरन, लघुकर गनियन कोई।
नाजुक पीपर बीज सम बचहिं तो तरुवर होई॥ १३५॥

—: ह :—

हिन्दू में क्या और है, मुसलमान में और।
साहिब सब का एक है, व्यापि रहा सब ठौर॥ १॥
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराय।
बूँद समानी समद में, सो कत हेरी जाय॥ २॥
हाड़ जलैं ज्यों लाकडी, बाल जलैं ज्यों घास।
सब जग जलता देखकर, भया कबीर उदास॥ ३॥
हवा फिरे ना पूछि हैं, कोउ कौडी के तीन।
या सों बहती नदी में, पाँव पखार प्रवीन॥ ४॥
हरे कबहुं दुख दीन के, प्रिय प्रानन पै खेल।
विपति विडारी काहू की, आप आपुदा झेल॥ ५॥
ह्वै अधीन याचै नहीं, सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी याचकहिं, को बारिद बिनु देइ॥ ६॥
होय बुराई तें बुरो, यह कीना निरधार।
खाई खोदै और कों, ताको कूप तैयार॥ ७॥
होइ बिपुल सम्पति तऊ, गुन युत भये उदोत।
तेल भरयौ दीपक तऊ, बिनु गुन जोति न होत॥ ८॥
हिन्दू मूए राम कहि, मुसलिम कहें खुदाइ।
कहें कबीर-सो जीवता, दुइ में कभी न जाइ॥ ९॥
हरि से तू जनि हेति करि, करि हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देति हैं, हरिजन हरि ही हेत॥ १०॥

ह्वै अधीन याचत नहीं, शीश नाय नहिं लेय।
ऐसे मानी माँगनहिं, को बारिद बिन देय ॥ ३७ ॥
हित पर बढ़त विरोध जब, अनहित पर अनुराग।
राम विमुख विधि वामगति, सगुन अघाय अभाग ॥ ३८ ॥

—: क्ष :—

क्षत्री सो जो क्षात्र को धर्म करैं निर्वाह।
पर रक्षा हित ना करै जीवन की परवाह ॥ १ ॥
क्षरण न कीजै शक्ति का क्षणिक भोग के काज।
बिना शक्ति संचित किये मिलैं न सुख के साज ॥ २ ॥
क्षणभंगुर जीवन तेरा अरे मूढ़ पहचान।
बार-बार पछितायगो जब निकल जायेंगे प्रान ॥ ३ ॥
क्षणभर करौ विचार सब अपना मूल स्वरूप।
नहीं तो पुनि पछितायँगे फेरि परै भव-कूप ॥ ४ ॥
क्षण क्षण बीतो जात या जीवन बस बेकार।
अरे ! मनुज !!पलभर कभी किया न बैठ विचार ॥ ५ ॥
क्षत विक्षत ह्वै जायगो कंचन सदृश शरीर।
अबहु भलौ जो काटिले माया की जंजीर ॥ ६ ॥
क्षति न हुई जो धन गया स्वास्थ्य गये लवलेश।
यदि चरित्र की क्षति हुई रहा न तौ कछु शेष ॥ ७ ॥
क्षमा-दान सब ते बड़ा जाहिं न जीतै क्रोध।
आपा निज शीतल करै औरन देय प्रबोध ॥ ८ ॥
क्षत्रिय क्षत्रिय कहे तें, क्षत्रिय होय न कोय।
सीस चढ़ावें खड्ग पै, क्षत्रिय सोई होय ॥ ९ ॥

—: त्र :—

त्रास न काहू दीजिये प्राणिमात्र सब एक ।
सबसे बड़ा अधर्म है पर - पीड़न की टेक ।। १ ।।
त्राण प्राण का ना हुआ किया न निज कल्याण ।
तुलसी सो या जगत में जीवित ही म्रियमाण ।। २ ।।
त्रिविधि करै निर्माण निज जो चाहै सुख-साज ।
स्वास्थ्य सुदृढ़ औ स्वच्छ मन रचना सभ्य समाज ।। ३ ।।
त्रिया पुरुष की सहचरी एक रूप दो नाम ।
पारस्परिक अभिन्नता मधुर स्वर्ग सुख-धाम ।। ४ ।।
त्रस्त हिमालय ना हुआ पस्त न हुआ समुद्र ।
अरे ! मनुज फिर क्यों भला तू बनता है क्षुद्र ।। ५ ।।
त्रास देय राजा जहाँ तहाँ न बसिये भूलि ।
दुःख उपजै चहुँ ओर ते नाशै शक्ति समूल ।। ६ ।।
त्रिकुटि मध्य भगवान का करैं सदा जो ध्यान ।
संतन की सेवा करैं ते पावहिं कल्यान ।। ७ ।।
त्रिया लक्ष्मी गेह की त्रिया शक्ति का स्रोत ।
जे घर तिरिया आदरहि तिनहिं अमित सुख होत ।। ८ ।।
त्रिकालज्ञ, सर्वज्ञ सोइ व्यापक जगत-अनन्त ।
ता प्रभु को सुमिरन करो जाकर आदि न अन्त ।। ९ ।।

—: ज्ञ :—

ज्ञान बड़ा संसार में अर्थ-धर्म को मूल ।
या पाये या जगत की सुख सुविधा अनुकूल ।। १ ।।
ज्ञानी बड़ो न मानियों करै बड़ा जो गर्व ।
तुच्छ बतावै औरहिं स्वयं जतावै सर्व ।। २ ।।

ज्ञान निरूपै सत्य जो शिशुहिं राखिये पूजि।
अल्प वयस शुभ मानहीं जिमि चन्दा की दूजि ॥ ३ ॥
ज्ञापन देय न ओर को दोष लखै निज माहिं।
चढ़यो पीलिया आँख में दुनिया पीली नाहिं ॥ ४ ॥
ज्ञाताज्ञात सुकर्म हूं रहिमन राखै गोय।
सुनें न मानें और कोऊ झूठ बतावै सोय ॥ ५ ॥
ज्ञान मिलै जो ईश को ताहि चढ़ावै शीश।
भूमि परे बिन राम के दश-आनन भुज बीस ॥ ६ ॥
ज्ञान मिलें जा वस्तु ते ताहि गुरु सम जान।
जाते दत्तात्रेय भे ज्ञानी पुरुष महान् ॥ ७ ॥
ज्ञान गम्य कहते सभी, ज्ञानी नर दिन रात।
उसे चाहते देखना, परम निराली बात ॥ ८ ॥
ज्ञान गरीबी गुरु धरम, नरम वचन, निरमोख।
तुलसी कबहुँ न छोड़िए, शील, सत्य, संतोष ॥ ९ ॥
ज्ञानी ध्यानी योग रत, विद्या बुद्धि प्रवीन।
बात न पूछै तात हू, है यदि वित्त विहीन ॥ १० ॥
ज्ञानी तापस सूरकवि, कोविद गुनि आगार।
केहि के लोभ विडम्बना, केहिन इह संसार ॥ ११ ॥
ज्ञान-भक्ति अरु कर्म की, है सत्संग दुकान।
जो चाहौ सो मोल ले, करि के श्रद्धा दान ॥ १२ ॥

श्री बृज मोहन लाल अग्रवाल द्वारा जय भारत प्रेस में मुद्रित